विज्ञान माला

संसार के महान् वैज्ञानिक

[जीवनी और कृतित्व]

लेखिका

श्रीमती लज्जा भार्गव, एम्० एस्-सी०

प्राध्यापिका रसायन शास्त्र

लक्ष्मीबाई गर्ल्स डिगरी कालिज, भोपाल

मुख्य वितरक—

प्रभात-पब्लिशिंग हाउस

नयागाँव, लखनऊ

वैज्ञानिकों की क्रम-सूची

★

विज्ञान के महत्वपूर्ण चरण

समय समय पर मनुष्य अपने आप से, अपने चारों तरफ से, और विश्व से जिन प्रश्नों का समाधान पूछता रहा है और उसके जो जो उत्तर हमें प्राप्त हुये हैं, वह है विज्ञान का इतिहास। विज्ञान हमें क्यों, क्या, और कैसे का उत्तर बतलाता आया है। विज्ञान का उद्देश्य रहा है कि वह प्रकृति को प्रत्येक रूप में समझे और फिर उस पर आधिपत्य स्थापित करके मनुष्य के लाभ के लिये उसकी शक्तियों का प्रयोग करें। वैज्ञानिक, सत्य का अन्वेषी रहा है उसने किसी की भी परवाह नहीं की है। बड़े बड़े वैज्ञानिकों, को अपने समय के धर्म के ठेकेदारों, समाज के स्थम्भों से टक्कर लेनी पड़ी है। प्रकृति के गूढ़ रहस्यों को समझने के लिये उन्हें एकांकी सन्यासियों जैसा जीवन बिताना पड़ा है। कई वैज्ञानिक ऐसे हुए हैं जिन्हें अपनी प्रयोगशाला में बैठे बैठे बिना खाये पिये कई दिन निकल जाते थे। अन्धेरे कमरों में बैठे हुये अपने स्वास्थ्य, धन की चिन्ता किये बिना वे कार्य रत रहे थे क्योंकि उनका ध्येय ऊँचा था। उनके त्याग से करोड़ों मनुष्य लाभ उठाते रहे हैं।

विज्ञान का प्रत्येक चरण अरस्तु (Aristotle) और प्लेटो (Plato) से आरम्भ होता प्रतीत होता है। ग्रीक के इन दार्शनिकों ने सत्य, तर्क और नियमों के पीछे अपना सारा जीवन लगा दिया था। वे इस बात की खोज करते रहे कि आखिर वह कौनसा पदार्थ है जिससे यह भुवन बना है। मध्यकालीन युग के विचारकों के सम्मुख यह समस्या उठ खड़ी हुई कि प्रकृति के कारणो और प्रभावों का अध्ययन करना सही है या प्रत्येक वस्तु को गीता, कुरान, बाईबल के कहे अनुसार प्रभु की इच्छा मान ली जाय। १४ वीं शताब्दी में अरस्तु के कुछ विचारों का प्रभाव क्षीण होने लगा था। लोग समझने लगे थे कि विज्ञान का मुख्य उद्देश्य प्रकृति के अचल, नियमों का रहस्योद्घाटन करना है और इसके लिये प्रयोगात्मक विज्ञान का महत्व बढ़ने लगा था। एक पेड़ उनके लिये अब लकड़ी और दवा का महत्व बतलाने वाला अंग नहीं रहा था। उसमें अब प्रकृति की पूरी कहानी छिपी हुई थी। सूर्य, चन्द्रमा और तारों के बारे में पुरानी धारणाओं की नीवें हिलनी शुरू हो गई थीं। कौपरनिकस को अपने सिद्धान्त प्रचलित करने के लिये इतना संघर्ष करना पड़ा था कि बेचारे को मृत्यु-शैया पर ही सूर्य-केन्द्रीय सिद्धान्त सम्बन्धी अपनी पुस्तक की एक प्रति प्राप्त हुई थी। गैलीलियो को कारागार की हवा खानी पड़ी थी। कैपलर और न्यूटन ने वस्तुओं की गतिशीलता के बारे में नियम बनाये।

ईसा की १८ वीं शताब्दी में वैज्ञानिक, गैसों को लेकर व्यस्त हो गये। कुछ विद्युत की रहस्यमयी शक्ति की खोज में लग गये। १६ वीं शताब्दी में विकास-वाद और रोगों के कीटाणु का सिद्धान्त सामने आया। डारविन की प्रसिद्ध पुस्तक जाति की उत्पत्ति (Origin of Species) ने विचारों का एक नया क्षितिज खोल दिया। मैन्डल के नियमों ने फसलों की उन्नति में और पशुओं की जाति सुधारने में कम सहयोग नहीं दिया है। लुई पास्चोर की कीटाणु सिद्धान्त ने लाखों व्यक्तियों की जीवन रक्षा का उपाय सदा सदा के लिये खोल दिया है। वैज्ञानिक अपने लिये नहीं जीता। वह औरों के लिये जीता है। आगे के पृष्ठों में उन्हीं महान वैज्ञानिकों की संक्षिप्त प्रेरणादायक जीवनी दी गई हैं और उनके कार्य-कलापों की छोटी सी रूप रेखा प्रस्तुत की गई है।

कौपरनिकस—१४७३-१५४३

(Copernicus)

आकाशीय पिन्डों के बारे में मनुष्य कुछ न कुछ जानने के लिये सदा ही उत्सुक रहा है और शायद सब से पहला ज्योतिषीय अवलोकन एक चीनी वैज्ञानिक द्वारा २००० वर्ष ई० पूर्व हुआ था। यूं तो भारत में भी इस दिशा में कुछ कार्य हुआ है। ज्योतिष-विज्ञान में आचार्य आर्य भट्ट ब्रह्मगुप्त और भास्कराचार्य का नाम बड़े आदर से लिया जाता है। आर्य भट्ट पाँचवीं शताब्दी में जिस निष्कर्ष पर पहुंच चुके थे उस पर दस शताब्दियों के बाद पन्द्रहवीं शताब्दियों में कौपरनिकस पहुंचा। जहाँ पूर्वी वैज्ञानिक इस चीज को बहुत पहले से ही जानते थे कि ग्रह सूर्य के चारों ओर अंडाकार कक्ष में चक्कर लगाते हैं वहाँ पश्चिमी देशों में विज्ञान पर धर्म की पुस्तक बाईबल का यह सिद्धान्त छाया रहा कि पृथ्वी स्थिर है और सूर्य तथा तारे उसके चारों ओर घूम रहे हैं। यही सिद्धान्त टौल्मी नामक एक अन्य वैज्ञानिक ने भी प्रतिपादित कर रखा था।

जिस समय कौपरनिकस का जन्म हुआ उस समय यूरोप में अन्धविश्वासों पर लोग अधिक चलते थे। उनमें धर्म के विरुद्ध सुनने की सहनशक्ति बहुत ही कम थी। परन्तु टौल्मी के विपरीत आवाज उठा कर कौपरनिकस ने मध्यमकालीन विज्ञान से आधुनिक विज्ञान तक एक ठोस कदम उठा लिया।

कौपरनिकस का जन्म १४७३ ई० में पौलेन्ड के टौरुन (Torun) नामक नगर में हुआ। इसका अध्ययन क्राको विश्वविद्यालय (Crocow University) में हुआ। वहाँ से वह बोलोग्ना (Bologna) और फिर रोम में अध्ययन करने के लिये चला आया। सन् १५०६ में ३३ वर्ष की आयु में वह अपना अध्ययन समाप्त करके लौटा और फ्राँनबर्ज (Fraw burg) के प्रधान गिर्जाघर का पादरी बन गया और १५४३ तक अपनी मृत्यु पर्यन्त वह वहीं रहा।

कौपरनिकस एक बहुप्रतिभाशाली व्यक्ति था। वह एक साथ चर्चमैन, विद्वान, वकील, कलाकार, कवि, वैद्य, अर्थ—शास्त्री, गणितिज्ञ और ज्योतिषाचार्य था। परन्तु उस का झुकाव अधिकतर गणित और ज्योतिष की ओर था। वह मौलिक ढंग से कार्य किया करता था। उसके विचार से पुरानी मान्यताओं को तभी तक मानना चाहिये जब तक वह हमें सही रास्ता बतलाये, परन्तु ज्योंहि वे हमें गुमराह करने लगें तो नये मार्ग हमें खोजने चाहियें। कौपरनिकस बहुत ही स्वतन्त्र विचारों का आदमी था। उसने जब अपना सूर्य केन्द्रीय सिद्धान्त निकाला तो

सारे जगत में हलचल मच गई। कोई भी यह मानने को तैयार नहीं होता था कि पृथ्वी अपनी कीली पर घूमती हुई, अचल सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाती है।

वैसे यह बात बहुत पहले लगभग ईसा के तीन सौ वर्ष पूर्व सामोस के एरिस्टारचस (Aristarchus of Samos) ने मालूम कर ली थी कि पृथ्वी न केवल अपने कक्ष पर घूमती है वरन् गोलाकार मार्ग में सूर्य के चारों ओर भी चक्कर लगाती है। परन्तु वह उसे प्रयोग द्वारा समझा नहीं सका। हम जानते हैं कि मनुष्य की प्रकृति ऐसी है कि सरल और सुग्राह्य वस्तुओं को ही जल्दी अपनाया जाता है कठिन और मौलिक विचारों को नहीं। साथ ही साथ अलैक्जैन्डरिया के टौलमी ने अरस्तु के सिद्धान्तों को पक्का करते हुये घोषणा की, कि पृथ्वी ही सारे ब्रह्माण्ड का केन्द्र है। सीमित दृष्टि वाले भोले भाले लोगों के लिये यह सिद्धान्त ज्यादा अच्छा था क्योंकि पृथ्वी कहीं भी चलती हुई हमें दिखलाई नहीं देती इसके विपरीत सूर्य; चन्द्रमा और तारे सब गतिमान दिखलाई देते हैं। यहाँ पर सब लोग उसी प्रकार धोखा खा गये जैसे चाँद के नीचे बादलों के चलने से हमें प्रतीत होता है कि बादल तो स्थिर हैं और चाँद चल रहा है।

यूरोप के लोग सोचते थे कि पृथ्वी के चारों ओर लगभग ८० चक्र हैं। इन्हीं चक्रों से जुड़े हुये सारे नक्षत्र पृथ्वी के चारों ओर घूम रहे हैं। परन्तु इस सिद्धान्त से नक्षत्रों की गतियों का सही ढंग से विश्लेषण नहीं हो पा रहा था। कोपरनिकास को यह बात बड़ी अजीब सी लगती थी कि भगवन् के सिद्धस्त हाथों ने जब सारे ब्रह्माण्ड का इतने सुन्दर और सुरुचिपूर्ण ढंग से निर्माण किया तो उस से यह भयानक भूल हो कैसे गई। इस प्रश्न का समाधान खोजने के लिये लगभग तीस वर्षों तक वह पुस्तकों के पृष्ठों पर कागजों के कोनों में, दीवालों पर और कुर्सियों, मेजों पर वह अपनी दिमाग की कल्पनामयी सूझों को पागल की तरह लिखता रहा। सचमुच उसके आस पास के लोग यही समझने लगे थे कि वह बौरा गया है। बात सही भी है क्योंकि बुद्धिमता जब अपनी सीमा छूने लगती है तो पागलपन बन जाती है। अन्त में जा कर उसने एक पुस्तक लिखी आकाश के पिन्डों का परिभ्रमण (De Revolutionileus Orbium Caelestiom) और देखिये यह कितनी विडम्बना की बात है कि उस की पहली प्रति उसे तब मिली जब वह मृत्यु-शैया पर पड़ा हुआ था।

उसकी मृत्यु के एक शताब्दी बाद उसके सिद्धान्तों को ले कर एक ऐसा गर्म वादविवाद उठ खड़ा हुआ कि जिसने संसार के सभी विचारकों को विवश

कर दिया कि पूर्व निर्धारित धाराओं और कौपरनिकस के विचारों की तुलनात्मक परीक्षा करें। कुछ लोग तो बहुत बुरी तरह तड़प उठे थे क्योंकि २००० वर्षों से चले आ रहे धार्मिक विश्वासों पर कौपरनिकस के सिद्धान्तों ने घातक प्रहार किया था। पुरानी आधारशिला अब काँपने लग गई थी। कौपरनिकस की मृत्यु के पश्चात ब्रूनो ने असीम शून्यता का सिद्धान्त निकाला जिसमें यह बतलाया गया कि प्रत्येक तारा हमारे सूर्य की तरह ही एक आग का गोला है जो हमारे सूर्य से भी कई गुना बड़ा हो सकता है। इधर कैंटलर ने कौपरनिकस के सिद्धान्तों को क्रमवार लिखने का कार्य किया और ग्रहों के गतियों के बारे में संसार को अपने तीन महत्वपूर्ण सिद्धान्त दिये। गैलीलियो ने अपने दूरदर्शक यन्त्र के द्वारा आकाश गंगा का निरीक्षण किया। तारों और ग्रहों की गतियाँ देखी गईं और जब उस की सहायता से प्रेक्षण (Observations) किये गये तो कौपरनिकस की सत्यता को लोग मानने लग गये।

आज हम विज्ञान को अलग अलग शीर्षकों से पढ़ते हैं। भौतिकशास्त्र रसायनशास्त्र, जीवशास्त्र, भूगर्भशास्त्र, गणित आदि आदि। इसलिये जब किसी एक शाखा में कोई नई वस्तु खोजी जाती है तो यह आवश्यक नहीं होता कि दूसरी शाखा के वैज्ञानिक को उसका पूरा हाल मालूम हो। परन्तु पहले ऐसा नहीं था। विज्ञान, विज्ञान के नाम से पढ़ा जाता था। इसलिये जब कोई भी आधार भूत परिवर्तन होता, तो सारे विज्ञान जगत में क्रान्ति मच जाती और वह सभी लोगों को प्रभावित कर जाता था। इससे तुम अन्दाज़ लगा सकते हो कि कौपरनिकस को क्या स्थान मिला होगा ?

गैलीलियो गैलिली (१५६४-१६४२)

(Galileo Galilei)

गैलीलियो को आधुनिक भौतिक शास्त्र का जनक कहा जाता है। वह इटली का महान वैज्ञानिक था। दूरदर्शक यन्त्र का आविष्कारक यही था। इसी ने कौपरनिकस के सिद्धान्तों की पुष्टि की थी। पीसा (Pisa) की झुकी हुई मीनार से प्रेरणा प्राप्त करके इसने दो महत्वपूर्ण सिद्धान्त विज्ञान-जगत को दिये थे। इसके अलावा भी इसने कई प्रयोग किये थे। प्रकाश का वेग नापने का प्रयत्न भी इसी ने किया था।

अठारा फरवरी १५६४ ई० में गैलीलियो का जन्म पीसा में हुआ था। इनका घराना ऊँचा था। फ्लोरेन्स के उच्च खानदानों में इनकी गिनती होती थी। घर के कई सदस्यों ने सरकारी उच्च पदों का काम संभाला हुआ था। भाग्य से गैलीलियो ने वैज्ञानिक वातावरण में ही अपने जीवन के प्रारम्भिक वर्ष बिताये, क्योंकि इनके पिता, विन सैन; जो एक बहुत बड़े गणितज्ञ और संगीत के प्रेमी थे वह स्वयं गैलीलियो को बालपन में विज्ञान् के सम्बन्ध में कई वस्तुऐं बतलाया करते थे। परन्तु उस समय डाक्टरों की ज्यादा माँग थी और उनको अच्छे पैसे मिलते थे इसलिये उसके पिता ने उसे पीसा के विश्वविद्यालय में डाक्टरी का अध्ययन करने के लिये भेज दिया। परन्तु गैलीलियो को तो छोटी आयु से ही तोड़ने, फोड़ने, मरम्मत करने और गणित की गूढ़ पहेलियों को सुलझाने में रुचि थी। भला डाक्टरी में उनका मन कैसे लगता। सन १५८३ में एक और महत्व-पूर्ण घटना इनके जीवन में हुई। यूक्लिड (Euclid) पर यह कहीं से व्याख्यान सुन आये, बस फिर क्या था अपना सारा अवकाश का समय उसी में लगाने लग गये और १५८५ में तो उन्होंने डाक्टरी को पूर्ण तिलांजलि दे दी और ठाठ से घर लौट आये। पिता को बहुत निराशा हुई परन्तु किसी प्रकार समझा बुझा कर फिर गणित और ज्योतिष ले लिये। १५८९ ई० में यह पीसा के विश्व-विद्यालय में अध्यापक हो गये।

जिस समय गैलीलियो ने अपना कार्य प्रारम्भ किया उस समय समाज एक सन्धिकाल से गुजर रहा था। वैज्ञानिक जगत में एक क्रान्ति जन्म ले रही थी। विश्व का मानचित्र बदल रहा था। कौपरनिकस के विरोधी अब ठन्डे पड़ चुके थे। हाँ अभी तक अरस्तु का प्रभाव बहुत कुछ सीमा तक वैसा ही जमा हुआ था। उसकी धारणाओं को चुनौती देना एक बड़े दुस्साहस की बात थी।

पीसा में रहते हुये गैलीलियो को अरस्तु के इस सिद्धान्त में शंका उत्पन्न हुई कि गिरती हुई वस्तु का वेग उसके भार पर अविलम्बित है। यह धारणा अरस्तु

ने हल्की वस्तुओं को हवा में ऊपर चढ़ते हुये देख कर बना ली थी। उसका कथन था कि एक हल्की और भारी वस्तु यदि एक ऊँचाई विशेष से गिराई जाय तो हल्की वस्तु देर से पृथ्वी पर पहुँचेगी और भारी वस्तु उससे पूर्व। यह बात गैलीलियो तक सर्वमान्य रही थी। किसी ने भी इसकी सत्यता को जाँचने का प्रयास नहीं किया था। गैलीलिओ ने जब यन्त्र-विज्ञान (Mechanics) का अध्ययन किया तो वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि प्रत्येक वस्तु चाहे उसकी मात्रा या भार कुछ भी हो वह पृथ्वी पर एक ही गति से आकर गिरेगी। उससे बतलाया कि जब कोई वस्तु गतिशील रहती है तो वह अलक्षित रूप से आगे बढ़ती जायेगी जब तक कोई अन्य उसकी गति में बाधा नहीं डाले। पंख और कागज पत्थर या लोहे की अपेक्षा पृथ्वी पर जो देर से पहुँचते हैं वह इसलिये नहीं कि उन के भार में कमी है अपितु इसलिये कि हवा उनको रोकती है। अपने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन करने के लिये वह पीसा की झुकी हुई मीनार पर चढ़ गये। काफी विद्वानों, वैज्ञानिकों को अपना प्रयोग दिखलाने के लिये उन्होंने आमन्त्रित किया। चोटी पर से उन्होंने दो भिन्न भिन्न मात्रा की गेंदों को नीचे गिराया जो एक ही साथ पृथ्वी पर गिरीं। गैलीलियो के कथन की सत्यता इस बात से भी सिद्ध हो जाती है कि यदि हम एक वायु शून्य लम्बी नली लें और उसके ऊपर के सिरे से एक लोहे की गोली और कागज छोड़े तो दोनों एक ही वेग से पृथ्वी पर गिरेंगे। यह यद्यपि लोगों की समझ में आ गई थी तथापि अरस्तु के विचारों के विरुद्ध थी और वे विचार-परिवर्तन के लिये कदापि तैयार न थे। वे अरस्तु के शब्दों को ब्रह्मवाक्य समझते थे। अरस्तु के समर्थक गैलीलियो के विरुद्ध हो गये और इनकी कटु आलोचना प्रारम्भ कर दी। उन्होंने जनता में प्रचार करना प्रारम्भ कर दिया कि गैलीलियो अपना महत्व बढ़ाने के लिये पुरानी परम्पराओं को तोड़ रहा है। इसका नतीजा यह निकला कि धार्मिक संगठन चर्चा के पादरियों और गैलीलियो में संघर्ष प्रारम्भ हो गया। परेशानी के बादल इनके सिर पर मडराने लगे। यह बिल्कुल अकेले थे और अन्त में हार कर इन्हें अपना नगर पीसा छोड़ना पड़ गया। और १५९२ ई० में 'पादुआ' विश्वविद्यालय में यह गणित के आचार्य नियुक्त हो गये।

पीसा को झुकी हुई मीनार से इन्होने दोलन सम्बन्धी एक और महत्वपूर्ण सिद्धान्त की खोज की थी जिसके आधार पर आगे चल कर घड़ियों का निर्माण हुआ। सन् १५८१ में यह एक बार मीनार के पास विचार मग्न बैठे हुए थे। यों ही शून्य दृष्टि से ताकते हुये इन्होंने ऊपर की ओर देखा कि ऊपर लटकता हुआ दिया हिल रहा है और उसके दौलन में समय वही लगता है दूरी चाहे कम हो या ज्यादा।

पादुआ विश्वविद्यालय में रहते हुये इन्होंने एक दूरदर्शक यन्त्र का आविष्कार किया। १६०८ ई० में लिप्परशी के नये आविष्कार स्पाई ग्लास (Spy glass) की सूचना पाकर एक ही रात में इसने दूरदर्शक यन्त्र का निर्माण कर दिया। उसने एक भारी सीसे की नली बनायी जिसमें उसने दो ताल रखे। एक नतोदर और दूसरा उन्नतोदर। इससे वस्तुऐं तीन गुना बड़ी दिखलाई देने लगीं। अपने यन्त्र में परिवर्तन करके उसने इसे ऐसा बना दिया कि पदार्थ तीस गुना बड़ा दिखलाई देने लगे। पहली बार इस महान वैज्ञानिक ने आकाश के अज्ञात और रहस्यमय भेदों की खोज की। उसने सूर्य और चन्द्रमा के धब्बे देखे और घोषणा कर दी कि सूर्य पवित्र और निष्कलंक नहीं है। उसपर धब्बे हैं। ग्रहों की गतियों का निरीक्षण करके उसने बतलाया कि कौ परनिकस का सूर्य केन्द्रीय सिद्धान्त ठीक है। वास्तव में ही सूर्य स्थिर है और सारे ग्रह उसके चारों ओर चक्कर लगाते हैं। उसने बुध और शुक्र ग्रह की कलायें देखीं और वृहस्पति ग्रह के उपग्रहों का पता लगाया। आकाश गंगा का रहस्य बतलाया कि वह दूधिया इसलिये दिखलाई देती है क्योंकि इसमें असंख्य तारे हैं जो बहुत ही निकट होते हैं।

कौपरनिकस के सिद्धान्त को सही बतलाकर यह मुसीबत में फंस गया। चर्च इसके विरुद्ध हो गये। धार्मिक लोग भड़क उठे। उसे कारागार भेज दिया गया। वहाँ उसे असंख्य यन्त्रणायें दी गयीं और अन्त में ७० वर्ष की आयु में अपने जर्जर स्वास्थ्य के कारण इसने झूठी कसम खाकर कि वह अपने सिद्धान्तों का कभी प्रचार नहीं करेगा, कारागार से मुक्ति ली। नया पोप इसका मित्र था इसलिये उसी ने इस प्रकार उसे छुड़वा दिया अन्यथा उसे आजीवन कैद की सजा मिली हुई थी।

अन्त में उन्होंने एक प्रकार का सन्यास ग्रहण किया और अपने गाँव चले आये और अपने अधूरे अन्वेषण और टूटी हुई आशाओं को लेकर ८ जनवरी १६४२ को यह इस स्वार्थी संसार से कूंच कर गये।

जौन कैपलर (१५७१-१६३०)

(John Kepler.)

कौपरनिकस गैलीलियो के बाद कैपलर ने महत्वपूर्ण कार्य किये। यह स्वीडन के प्रसिद्ध भौतिक विशेषज्ञ टाइको-ब्राही (Tycho-Brahi) के शिष्य थे। सौलहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में सूर्य और ग्रहों की चाल का अध्ययन इन दोनों ने मिलकर किया तथा मंगल ग्रह द्वारा सूर्य के चारों ओर घूमने वाली कक्ष का अध्ययन किया और टाइको ब्राह्मी की मृत्यु के बाद अपने निरीक्षणों के आधार पर कैपलर ने तीन महत्वपूर्ण सिद्धान्त (Kepler's three laws of motion) बनाये जिनके द्वारा आज तक उनकी कीर्ति अक्षुशण बनी हुई है।

कैपलर का जन्म, २१ सितम्बर सन १५७१ ई० को बुर्टम्बर्ग के वील (Weil) नामक स्थान पर हुआ। उन दिनों इसके माता पिता सोचनीय दिन बिता रहे थे यद्यपि किसी समय उनकी हालत अच्छी थी। विवश होकर कैपलर को प्रारम्भ के दिनों में एक सराय वाले के पास पानी पिलाने का काम करना पड़ा। फिर वह आस पास के स्कूलों में भी पढ़ता रहा। १५८९ में उसने स्कूल की अन्तिम परीक्षा पास करली तथा फिर वह ट्यूबिनजन विश्वविद्यालय (Tubingen University) में चले गये। इसके पूर्व वह रुडेलवर्ग तथा मालब्रोन के कालेजों में भटकते रहे। १५९४ ई० में उन्होंने डिग्री ले ली। अपने कालेज के अन्तिम वर्षों में वह अपने एक अध्यापक मास्लिन के सम्पर्क में आये तथा कौपरनिकस के सिद्धान्तों के समर्थक बन गये फलस्वरूप १५९६ ई० में उन्होंने अपना एक शोध-पत्र प्रकाशित करवाया जिसमें टौलमी के विचारों की आलोचना करते हुये कौपरनिकस को सही बतलाया गया था।

इन्हीं दिनों इनका सम्पर्क टाइको-ब्राही से हुआ। और १६०१ ई० में यह उनके सहायक बन गये। टाइको-ब्राही वह पहला वैज्ञानिक था जिसने सूर्य-ग्रहण, चन्द्र-ग्रहण, और चन्द्रकला का ठीक ठीक अध्ययन किया। टाइकोब्राही की मृत्यु के बाद कैपलर ने जो तीन सिद्धान्त प्रतिपादित किये वे निम्नलिखित हैं:—

(१) प्रत्येक ग्रह सूर्य के चारों ओर एक अंडाकार कक्ष (Elliptical orbit) पर भ्रमण करता है तथा सूर्य उसको एक नाभि (Focus) पर स्थित रहता है।

(२) ग्रह और सूर्य को मिलाने वाली अर्धव्यास वाली रेखा (Radius Vector) बराबर समय में बराबर क्षेत्र पर गुजरती है।

(३) ग्रह के घूमने के समय का वर्ग, उसकी सूर्य से दूरी के घन का अनुपातिक होता है।

इन नियमों को समझने के लिये निम्नांकित चित्र से सहायता मिलेगी ।
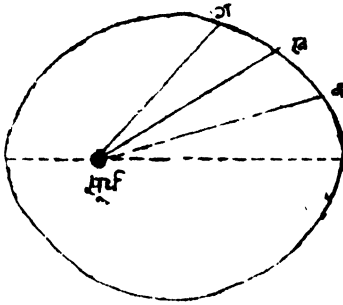
यह गोल गोल रेखा एक अन्डाकार मार्ग है जिसकी एक नाभि पर सूर्य स्थित है । मान लीजिये कोई ग्रह क, ख, ग, स्थितियों में इसके चारों ओर भ्रमण कर रहा है । पहले नियम को यदि हमें सिद्ध करना है तो वर्ष के थोड़े थोड़े समय के बाद पृथ्वी और सूर्य की दूरी निकाल ली जाय । क्योंकि यह दूरी कभी कम हो जाती है और कभी ज्यादा इसलिये सिद्ध होता है कि वृत अंडाकार है, न कि गोल । क्योंकि यदि यह वृत बिल्कुल गोल होता तो इसका अर्धव्यास एकदम स्थिर रहता । ३१ दिसम्बर को यह दूरी सबसे कम हो जाती है तथा एक जुलाई को सबसे अधिक ।

दूसरे नियम के अनुसार यदि क एक ग्रह की स्थिति है अब यदि यह ग्रह एक छोटे से बराबर समयान्तर पर ख और ग स्थानों पर जाता है तो त्रिभुज (क, सू, ख,) का क्षेत्रफल (ख, सू, ग,) के बराबर होगा । या (क, सू, ख,) का मान लगभग (क, सू $\times \theta$) होगा, यह θ कोण क सू ख है । और इसका क्षेत्रफल ($\frac{1}{2}$ सू,क $\times \theta$) होगा । यदि (स, क) को नाप लिया जाय और θ का मान ज्ञात कर लिया जाये तो यह नियम (क.सू.ख) और (ख.सू.ग) क्षेत्रों पर अनुप्राणित हो सकता है ।

कैपलर के तीसरे नियम का उपयोग न्यूटन ने किया था । उसको सिद्ध करने के लिये यह कल्पना करनी पड़ी कि सूर्य और ग्रह के बीच कोई आकर्षण शक्ति कार्य करती है और न्यूटन ने अपना अलग सिद्धान्त इसी आधार पर निकाला कि प्रत्येक दो कणों में आकर्षण होता है और यह आकर्षण दोनों कणों की मात्रा के गुणनफल के सम-अनुपाती और बीच की दूरी के वर्ग के विपरीत अनुपाती होता है ।

कैपलर के यह तीन नियम सदा महत्वपूर्ण सिद्धान्त बनाये रखेंगे । इसके अतिरिक्त कैपलर ने एक पुस्तक लिखी थी "ऑव सिलैस्टियल हारमोनिक्स" (On Celestial Harmonics) जिसके द्वारा सौरमन्डल की व्याख्या की गई है ।

सर आइज़क न्यूटन (१६४२-१७२७)

(Sir Issac Newton)

न्यूटन जैसे प्रतिभाशाली वैज्ञानिक को कौन नहीं जानता । न्यूटन भी भाग्यशाली था क्योंकि उसके समय से वैज्ञानिक चेतना प्रारम्भ हो चुकी थी । उस समय (न्यूटन के कार्यकाल में) १६७०—१६८० में लन्दन और पैरिस में वैज्ञानिकों के एक समूह ने लोगों के विचारों के लिये एक नया क्षितिज खोल दिया था । English Royal Society और French Academy of Science ने महत्वपूर्ण कार्य प्रारम्भ कर दिये थे । वैज्ञानिकों, दार्शनिकों में नये तथ्यों को खोजने के लिये एक अपूर्व लगन जाग चुकी थी । स्थान स्थान पर सभायें होती थीं भाषण होते थे और प्रदर्शन होते थे ।

यह हलचल काफी पहले से आरम्भ हो चुकी थी । कौपरनिकस स्वयं आकाशीय पिन्डों का वैज्ञानिक दृष्टिकोण पूरी तरह प्रस्तुत नहीं कर सका था । १५७२ में एक नया नक्षत्र लोगों को दिखाई दिया था जो एक चमकदार रोशनी से जगमगाता था और जो दो वर्ष के बाद अन्तर्धान हो गया । यह एक पूर्ण आश्चर्यजनक बात थी क्योंकि पुरानी धारणाओं के अनुसार आकाश और तारे अविचल और अडोल रहने चाहिये थे । १५७७ में एक नया धूमकेतु दिखलाई पड़ा । पहले यह सोचा जाता था कि धूमकेतु पृथ्वी का धुँआ है जो गगन में जा कर चमकदार बन जाता है परन्तु यह धूमकेतु बहुत ऊँचे सुदूर आकाश में देखा गया था इसलिये लोग सोचने लगे कि शायद यह गगन बिहारी पुँज है । इस प्रकार के वातावरण में न्यूटन का जन्म हुआ और वह उस में बड़ा हुआ ।

सत्रहवीं शताब्दी में लिंकनशायर (Lincolnshire) के ग्रान्थम (Granthem) नामक स्थान में १६५२ ई० के बड़े दिन न्यूटन का जन्म (अपने पिता की मृत्यु के बाद) हुआ जन्म के समय इसका स्वास्थ्य इतना गिरा हुआ था कि लोग सोचते थे कि वह अधिक दिनों तक नहीं जी सकेगा । दो वर्ष की आयु में यह अपनी दादी के पास रहने लगा था क्योंकि इसकी माता ने दूसरा विवाह कर लिया था । पहले प्रारम्भिक वर्ष इसने ग्रान्थम के साधारण स्कूलों में बिताये । १४ वर्ष की आयु में उसका पढ़ना छुड़वा दिया गया और उसे खेतों में काम करने के लिये भेज दिया गया । परन्तु इसका मन गणित और दार्शनिक विचारों में सदा खोया रहता था । इसके मामा के प्रयास से वह दुबारा स्कूल में भर्ती करा दिया गया । १६६१ ई० में अपनी महत्वाकांक्षा अनुसार इस ने कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के ट्रिनिटी (Trinity) कालेज में प्रवेश पा लिया ।

उस समय वैज्ञानिक यह खोज रहे थे कि जब सूर्य और ग्रह अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रख रहे हैं तो ऐसी कौन सी शक्ति है जो उनको अपने नियमित मार्ग पर एक लय में स्थिर रखती है। सबसे पूर्व विलियम गिलबर्स्ट (William Gillerst) ने सोचा कि पृथ्वी एक चुम्बक है और इस चुम्बकत्व के आकर्षण से सभी आकाशीय पिन्ड टिके हुये हैं।

न्यूटन ने १६६५-६६ में एकाएक इस का हल ढूंढ निकाला। एक तो केपलर के नियमों का वह अध्ययन कर रहे थे और दूसरा अरस्तु का गुरुत्वाकर्षण सम्बन्धी सिद्धान्त गलत हो चुका था। अरस्तु के विचारानुसार वस्तुओं में भार होता है और वे ऊपर से नीचे की ओर गिरती हैं क्योंकि विश्व का केन्द्र पृथ्वी उन्हें अपनी ओर खींचता है। अर्थात् मंगल ग्रह से यदि एक पत्थर लुढ़काया जाये तो वह पृथ्वी पर आ गिरेगा। परन्तु जब कोपरनिकस का यह सिद्धान्त सिद्ध हो गया कि पृथ्वी सूर्य के चारों ओर चक्कर काट रही है तो पृथ्वी विश्व का केन्द्र न रही और अरस्तु का तर्क निराधार हो गया। इन्हीं सब उलझनों को लेकर एक बार वह अपने बगीचे में बैठे हुए मनन कर रहे थे कि ऊपर पेड़ से एक सेव नीचे गिर गया। एकाएक उन्हें सूझ गया कि यह पृथ्वी की आकर्षण शक्ति से नीचे आ गया है। और उन्होंने अपने गुरुत्वकर्षण नियम का प्रतिपादन कर दिया जिस के अनुसार भौतिक पदार्थ का प्रत्येक कण एक दूसरे कण को आकर्षित करता है और यह आकर्षण-शक्ति उनकी मात्रा के गुणनफल के समानुपाती और उनके बीच की दूरी के विपरीत अनुपाती होता है।

सन् १६६५ ई० में लन्दन में भयंकर प्लेग फैल गया। कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय बन्द कर दिया गया और विवश होकर न्यूटन को अपने गाँव आना पड़ गया। वहीं एकान्त में रह कर यन्त्र विद्या की नींव डाली। उन्होंने गणित का विकास किया और एक नयी शाखा चलन कलन (Differential Calculus) को खोज निकाला इसके अतिरिक्त प्रकाश विज्ञान (Cptics) में इन्होंने महत्वपूर्ण खोजें की। बाईनोमियल प्रमेय (Binomial Theorem) भी आपने खोजी। १६८७ ई० में अपनी सारी धारणाओं का सार, इन्होंने अपनी अमर पुस्तक प्रिंसीपिया (Principia) में कर दिया।

अपने लम्बे अविवाहित जीवन के तीस वर्ष इन्होंने कैम्ब्रिज में व्यतीत कर दिये। १६६९ ई० में वह प्राकृतिक दर्शन शास्त्र (Natural Philosophy) के प्राध्यापक नियुक्त हो गये। १६७२ ई० में यह (Royal Society) के सदस्य चुन लिये गये। १७०५ ई० में इनको 'सर' की उपाधि मिली और इनके सिद्धान्तों को मान्यता दे दी गई।

न्यूटन ने ही सर्वप्रथम ज्वार-भाटे का वैज्ञानिक विश्लेषण किया था और उस का सम्बन्ध चन्द्रमा से बतलाया था। इनके गति के नियम तो बहुत ही महत्वपूर्ण हैं जो निम्नलिखित हैं: -

(१) प्रत्येक वस्तु अपनी अवस्था में ही रहना चाहती है चाहे वह स्थिर हो अथवा गतिशील जब तक वह किसी वाह्य बल द्वारा अपनी अवस्था परिवर्तन के लिये विवश न करदी जाय। न्यूटन के अनुसार भौतिक वस्तुएँ गति हीन होती हैं। और जब कोई वस्तु चलती हुई रुक जाय तो इसका कारण कोई वाह्य शक्ति है। इन बातों को समझने के लिये हम यह उदाहरण ले सकते हैं। रेलगाड़ी या कार जब एकाएक चल दें तो उसमें बैठे हुये व्यक्ति को झटका लगता है और वह पीछे की ओर लुढ़क जाता है। यह इसीलिये कि जब रेल या कार चलती है तो शरीर का निचला भाग गतिमान हो उठता है परन्तु ऊपर का भाग अचल रहता है इसलिये आदमी लुढ़क जाता है। इसी प्रकार चलती हुई रेल से जब कोई आदमी उतरता है तो उसे ज़ोर का झटका लगता है और वह गिर भी जाता है क्योंकि पैर जब पृथ्वी को छूते हैं तो स्थिर हो जाते हैं जबकि शरीर रेल की गति के साथ गतिमान रहता है और यह अन्तर अस्थिर कर देता है।

(२) किसी वस्तु पर लगाया हुआ बल उसके आवेग परिवर्तन की दर (Rate of Change of momentum) के सीधा समानुपाती होता है। बन्दूक से छूटी हुई गोली का वेग उसके आवेग परिवर्तन की दर को बढ़ा देता है और गोली शरीर से पार हो जाती है। आँधी में हवा के छोटे छोटे कणों का वेग बहुत बढ़ जाता है और उन में बल इकट्ठा हो जाता है इसलिये वे बड़े पेड़ों को उखाड़ फेंकती है।

(३) प्रत्येक क्रिया (Action) की उसीके बराबर, किन्तु विपरीत दिशा में, प्रतिक्रिया (Reaction) होती है। जब बन्दूक से गोली छूटती है तो जितने वेग से गोली आगे जाती है उतनी ही विपरीत दिशा में भी बन्दूक झटका देती है। इसी प्रकार पृथ्वी चन्द्रमा को खींचती है और चन्द्रमा भी पृथ्वी को अपनी ओर खींचता है।

न्यूटन की मृत्यु १७२७ ई० में हुई और वह वैस्टमिन्स्टर ऐबे (Westminster Abbey) में दफना दिये गये।

फैराडे और उसके कार्य (१८०१-१८६७)

(Faraday and his works)

अपने सरल जीवन, अध्यवसाय, लगन और परिश्रम से मानव समाज में उच्च स्थान बनाने वालों में माइकेल फैराडे का नाम अग्रणीय है। उनके जीवन-वृत को देखकर यह कहावत बेकार मालूम पड़ती है कि मनुष्य परिस्थितियों का दास है। जिस छोटे, गरीब और दुःखी परिवारमें वह उत्पन्न हुये, उससे यह कोई कल्पना भी नहीं कर सकता कि उस हीन वातावरण में विज्ञान का अँकुर फूटा होगा।

माइकेल फैराडे का जन्म एक गरीब लुहार के घर २२ सितम्बर १८०१ को 'नीविंगटन बट्स' (लंदन) में हुआ। इनका परिवार पूरी तरह रोटी भी नहीं जुटा पाता था। उसके पिता रोज़ कुआँ खोद करके पानी पिया करते थे। यहाँ तक कि एक बार आकाल में एक रोटी से पूरे सप्ताह भर परिवार को गुज़ारा करना पड़ गया था। ऐसी हालत में तो फैराडे की शिक्षा-दीक्षा का तो प्रश्न ही नहीं उठता। कहते हैं कि बहुत छोटी सी आयु में फेराडे को अपनी रोटी कमाने के लिये पहले दफ्तरी और बाद में जिल्दसाज़ी का काम करना पड़ा। १२ वर्ष की आयु तक यह जिल्दसाजी का काम करते रहे। अपने जिल्दसाज़ी के कार्य के बीच यह मन लगाकर अध्ययन करते रहे। दूकान पर कई प्रकार की पुस्तकें जिल्द बँधने के लिये आया करती थीं उन पुस्तकों में विज्ञान की पुस्तकें छाँट छाँट कर यह मनन करते, छोटे छोटे यन्त्र बना कर घर जा कर छुपे छुपे प्रयोग करते। इस प्रकार दिन ब दिन इनकी रुचि वैज्ञानिक विषयों की ओर बढ़ती गई।

एक दिन बड़ी आश्चर्यजनक घटना हुई, जिसने इनके जीवन की धारा को ही बदल दिया। रोज़मर्रा की भाँति दोपहर को अवकाश के समय बैठे हुये एक विज्ञान की पुस्तक में विद्युत वाला अध्याय यह बड़े ही मनोयोग से पढ़ रहे थे। उसी समय इन्गलैण्ड की प्रसिद्ध वैज्ञानिक संस्था "रायल इन्स्टीट्यूशन" का एक माननीय सदस्य किसी पुस्तक की जिल्द साज़ी के सम्बन्ध में इनकी दूकान पर आया। फैराडे को इतनी तल्लीनता से पढ़ते हुये देखकर उन्हें बड़ी जिज्ञासा हुई। उससे बातें करके वह फैराडे की प्रतिमा और सूझ-बूझ के प्रति मोहित हो गये। उन दिनों वहाँ के प्रसिद्ध वैज्ञानिक सर हमफ्रेन्डेवी द्वारा "रायल इन्स्टीट्यूशन" में विज्ञान सम्बन्धी कुछ भाषण दिये जा रहे थे जिनको सुनने का सौभाग्य कुछ इने-गिने व्यक्तियों को ही मिल पाता था। तो इन सदस्य महोदय ने फैराडे को भाषण सुनने का निमन्त्रण और टिकिट दे दिया। फैराडे के लिये यह स्वर्णावसर था। उन्होंने स्वीकार कर लिया और रोज डेवी का भाषण सुनने के लिये उन्होंने जाना प्रारम्भ कर दिया।

डेवी के भाषणों का फैराडे पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। उनके विचारों को एक नयी दिशा मिली और विद्युत अध्ययन का सार मिला। भाषणों के दौरान में फैराडे अपनी कापी पर कुछ नोट्स उतारा करते थे। भाषणमाला समाप्त होने पर इन्होंने अपने सारे नोट्सों को अपनी टिप्पणीयों सहित डेवी के पास भेज दिया। डेवी अपने भाषणों को हू ब हू लिपिबद्ध पाकर दंग रह गये। उन्होंने झट फैराडे को बुलवाया और "रायल इन्स्टीट्यूशन" में अपना सहकारी नियुक्त कर लिया। वेतन के रूप में उसे १०० शिलिंग मासिक मिलने लग गये।

'रायल इन्स्टीट्यूशन' में आने के बाद फैराडे का विकास बहुत शीघ्रता से हुआ। डेवी के साथ वह डेढ वर्ष के लिये यूरोप भ्रमण के लिये गये। वहाँ उनकी मुलाकात बड़े-बड़े वैज्ञानिकों से हुई। उनके संसर्ग से इन्होंने बहुत कुछ सीखा और वापिस लौटने पर यह अनुसंधानों और खोजों में लग गये।

सबसे प्रथम इन्होंने पता लगाया कि विद्युत-धारा के चारों तरफ चुम्बक घूम जाता है। और इसके सिद्ध करने के लिये एक खास प्रकार का उपकरण भी तैयार किया। १८२७ में डेवी के विश्राम लेने पर वह डायरेक्टर बन गये। १८३१ में इन्होंने सिद्ध किया कि विद्युत बिना बैट्री के भी पैदा की जा सकती है। उन्हीं दिनों एक गर्भवती महिला ने उनसे प्रश्न किया कि ऐसी विद्युत से लाभ क्या होगा। इन्होंने पलटकर पूछा नवजात बालक से क्या लाभ मिलता है? इन्गलैण्ड के प्रधान-मन्त्री ग्लेडस्टन भी कुछ शंकित थे परन्तु फैराडे ने कहा कि इसी विद्युत पर सरकार टैक्स लगा सकेगी और सचमुच ही कुछ वर्षो में उनकी भविष्यवाणी सत्य होगई।

इसके अतिरिक्त फैराडे ने और भी अनगिणत महत्वपूर्ण आविष्कार किये हैं। विद्युत विश्लेषण पर बनाये हुये आपके दो प्रसिद्ध नियम हैं जो निम्न हैं:—

(१) किसी विच्छेदीय (Electrolyte) पर स्वतन्त्र होने वाले आयनों की मात्रा उस घोल में प्रवाहित होने वाली विद्युतधारा की मात्रा के समानुपाती होती है।

(२) यदि कई विच्छेदीय पदार्थो में से बराबर बराबर मात्रा में विद्युत-धारा प्रवाहित की जाय तो इलैक्ट्रोडों पर स्वतन्त्र होने वाले आयनों की मात्रा उनके रासायनिक तुल्यांको के समानुपाती होती है।

इसके अतिरिक्त क्लोरीन गैस को द्रव्यवायु भी बनाने की सर्वप्रथम विधि फैराडे ने खोजी थी। इसके साथ साथ फैराडे ने विद्युत चुम्बकत्व, स्थिर विद्युतीय उप-पादन, चुम्बकीय और विद्युतीय बल रेखायें, चलविद्युत-धारा, चुम्बकीय-ध्रुवीकरण, विद्युत-चुम्बकीय उपपादन, आदि पर अनेकों महत्वपूर्ण खोजें की हैं। बैजीन का भी आबिष्कार इन्होंने ही किया था। मिश्र धातुएं जो इस्पात से बनती हैं, वे भी आप ही की खोज हैं। इनकी खोजों की संख्या १६०४१ तक पहुँच गई थी। २५ अगस्त १८६७ को वह अपना कार्य करते हुये इस संसार से चल बसे।

रोंजन और एक्स-किरणें (१८४५-१९२३)

(Rontgen and X-Rays)

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों में सन् १८९५ ई० में एक्स किरणों का आविष्कार नोबेल पुरस्कार विजेता प्रो० रोंजन द्वारा लीपजिग (Leipzig) के स्थान पर किया गया। प्रो० रोंजन को उस समय इन अन्तरभेदी किरणों का स्वभाव पूरी तरह मालूम न हो सका था इसलिये उन्होंने अपनी कीर्ति का लोभ छोड़ कर उनका नामकरण एक्स किरणें (अर्थात् अज्ञात किरणें) रख दिया। वैसे इन किरणों को आविष्कर्त्ता के नाम पर रोंजन किरणें भी कहकर पुकारते हैं।

रोंजन का जन्म २७ मार्च १८४५ ई० में प्रशिया (जर्मनी) में हुआ। प्रो० कुन्ड (Kundt) के पास ज्यूरिज नगर में आपने अध्ययन किया। वुजबर्ग विश्वविद्यालय में १८८८ में आप प्राध्यापक नियुक्त हो गये। फोटोग्राफी में आपकी प्रारम्भ से ही रुचि थी। काँच को फुला कर नयी नयी आकृतियाँ भी यह बनाया करते थे। उन दिनों वैज्ञानिकों में प्रयोग के प्रति बड़ा चाव चल पड़ा था जो प्रत्येक लैक्चर के साथ बतलाया जाता था। इसमें एक सील बन्द काँच की नली में विद्युत को कम दबाव की गैसों से होकर प्रवाहित किया जाता था। सन् १८९२ ई० में उन्होंने काँच का एक बड़ा गोला बनाया जिसमें नलिकाऐं जुड़ी हुई थी। एक बार आप इसी विसर्जन नलिका से ऊपर लिखे अनुसार प्रयोग कर रहे थे कि एकाएक उन्होंने अनुभव किया कि जो फोटोग्राफिक प्लेट्स उन्होंने निकट रखी हुई थी वे एकाएक उद्घाटित हो गई यद्यपि वे काले कागज से भली प्रकार ढ़की हुईं थीं। उन्हें बड़ा रोष आया और वे अपनी प्रयोगशाला से निकल कर नौकरों पर बरस पड़े। दूसरे दिन फिर यही घटना हुई अबकी बार सहायक की बारी आयी। तीसरे दिन वह स्वयं प्लेट्स को ढक कर अच्छी तरह अपनी प्रयोगशाला में लाये परन्तु उनकी निराशा की सीमा न रही कि फिर प्रकाश उसमें कहीं से चला गया और वे उद्घाटित हो चुकी हैं। हो न हो उन्होंने सोचा यह उस फोटोग्राफर की शैतानी है जहाँ से ये प्लेट आई हैं। वह स्वयं चलकर फोटोग्राफर के पास पहुँचे और उसे बुरा भला सुनाने लग गये। फोटोग्राफर ने हाथ पैर जोड़कर उनको समझाने की चेष्टा की कि यह कसूर उसका नहीं था। वहाँ से अपने सामने प्लेट निर्माण करवाकर वह फिर अपनी प्रयोगशाला में आये। परन्तु होना वही था जो पहले तीन बार हो चुका था। अब वह यह सोचने के लिये विवश हो गये कि यह खराबी प्रयोगशाला में ही होती है। एकाएक उन्हें ध्यान आया कि जब जब प्लेटें खराब हुई हैं तब तब वह विसर्जन

नलिका द्वारा प्रयोग कर रहे थे अर्थात इस नलिका का सम्बन्ध उन प्लेटों से हुआ। उन्होंने विसर्जन नलिका के निकास मुख पर अपना बटुआ रख दिया। उनके आश्चर्य की सीमा न रही जब उन्होंने देखा कि बटुए में रखे हुए सिक्को की छाया तो दीवार पर पड़ गई है किन्तु बटुए की नहीं। फिर उन्होंने एक पुस्तक रखी जिसमें एक चाबी रखी हुई थी। चाबी की छाया तो आ गई परन्तु पुस्तक की नही। अब उन्होंने अपना हाथ निकास मुख पर रखा और दीवार पर हाथ की हड्डियों की छाया आ पड़ी परन्तु माँस का कहीं पता ही नहीं था। इसका अर्थ यह हुआ कि कुछ अदृश्य किरणें उस नली से निकल रही हैं जो हल्के और कोमल पदार्थों के भीतर तो प्रवेश कर जाती हैं परन्तु ठोस पदार्थों में नहीं। इसीलिये फोटोग्राफी की प्लेटें खराब हो गई थीं क्योंकि यह किरणें काले कागज से पार हो गई थीं। अब क्या था, इनके हाथ एक नया सूत्र लग गया। यह दिन-रात प्रयोगों के पीछे जुट गये। अब इन्होंने पता लगाना शुरू कर दिया कि ये किरणें किन किन पदार्थों में से होकर गुरजती हैं। इन्हें ज्ञात हुआ कि 'बोरियम-प्लैटिनो-साइनाइड' की प्लेट सब से अधिक प्रभावित होती है। यह पदार्थ इन किरणों द्वारा हरी चमक से दमक उठता है। १८९८ ई० में रोंजन ने अपनी इस खोज की घोषणा कर दी। १८९६ में रुमफोर्ड पदक इनको मिला और १९०० ई० में भौतिक विज्ञान का नोबेल पुरस्कार देकर इनकी सेवाओं को सम्मानित किया गया।

बाद में यह सिद्ध कर दिया गया कि ये किरणें बहुत ही कम तरंग लम्बन (Wave Length) वाली वैद्युतिक चुम्बकीय तरँगों से उत्पन्न होती हैं। जब कैथोड किरणें किसी से जाकर टकराती हैं तो एक्स-किरणें उत्पन्न हो जाती हैं।

एक्स-किरणों का उत्पादन करने वाली रोंजन ने कांच की एक फूली हुई नली ली थी, जो वास्तव में कैथोड़ किरण उत्पादक नली थी। इस रीति से उत्पन्न एक्स किरणें उतनी तीव्र नहीं होती। आजकल जो सुधरा हुआ रूप मिलता है उसकी बनावट इस प्रकार है :—(चित्र अगले पृष्ठ पर)

यह काँच की एक खोखली नली होती है जिसका बीच का भाग फूला हुआ और गोल होता है। इसके एक तरफ एक छोटी सी पार्श्व नलिका K होती है जिसके भीतर एल्यूमीनियम की एक नतोदर प्लेट लगी होती है। इसके ठीक सामने एक एनोड A नलिका होती है। इसके अतिरिक्त एक और एनोड S नलिका होती है जिसे सह-एनोड भी कहते हैं यह प्लेटिनम या टंगस्टन की चकती से जुड़ी रहती है। A और S का सम्बन्ध जुड़ा रहता है। कैथोड को कम विभव वाले और एनोड को अधिक विभव वाले सिरे के विद्युत-स्रोत से

जोड़ दिया जाता है। आजकल इस से भी परिष्कृत नलियाँ कूलिज नली (Coolidge tube) तथा शीयरर (Shearer) नलियाँ आती हैं।
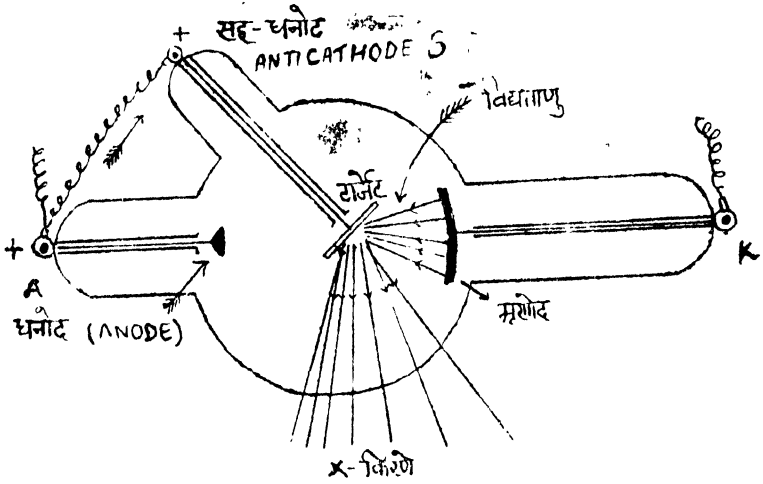
एक्स-किरणों का आजकल बहुत उपयोग हो रहा है। सर्जरी, आपरेशन आदि में इसको काम में लाया जाता है। शरीर के अंगों का छाया चित्र, केन्सर का इलाज, इन्जीनियरिंग में इस्पात की बनावट के दोषों का पता लगाया जा सकता है। सीपों में मोतियों के अस्तित्व का पता भी इसी से लग सकता है। हीरों की परख इससे हो सकती है क्योंकि असली हीरे की अपेक्षा नकली में एक्स-किरणें ज़रा अवरोध से पार होती हैं। चमड़े या लकड़ी के सन्दूक को बिना खोले उसके भीतर की वस्तुओं का पता लगाया जा सकता है। इससे महसूल चुंगी वालों को बड़ी सहायता मिलती है। कोई भी आदमी चोरी से बारुद, सोना इत्यादि नहीं ले जा सकता। यदि कोई चोर सोने की कोई वस्तु निगल जाय तो उसका पता एक्स-किरण द्वारा ही लगाया जा सकता है। रवों की आन्तरिक रचना जानने के बारे में भी एक्स किरणें बड़ी लाभदायक सिद्ध हुई हैं। परमाणु की भीतरी बनावट जानने में भी इसके द्वारा काफी सहायता मिली है। एक्सकिरणें फोटो ग्राफी प्लेट को भी प्रभावित कर देती हैं इसलिये क्षय आदि रोगियों का जब एक्स-रे कराया जाता है तो उसका चित्र बन जाता है इसे रेडियोग्राफ (Radiograph) कहते हैं।

एक्स-किरणें सीधी रेखाओं में चलती हैं और अगोचर रहती है।

सर जोसफ जॉन थॉमसन (१८५३–१९४०)

(J. J. Thomson)

पदार्थ की रचना के बारे में बहुत पूर्व भारतीय दार्शनिकों ने तथा युनानी दार्शनिकों ने जो सिद्धान्त बतलाये थे, वे किसी न किसी रूप में अब भी मान्य हैं। कणाद, कमिल आदि के अनुसार पदार्थ बहुत छोटे छोटे कणों से बना हुआ होता है जो अविभाज्य रहता है। युनान के प्रसिद्ध दार्शनिक डैमोक्रिटस (Democritus) का भी विचार इस से मिलता जुलता था। परमाणु (Atom) का अर्थ युनानी भाषा में होता है अविभाज्य। परन्तु डैमोक्रिटस भारतीय दार्शनिकों से एक कदम आगे बढ गया। उसका कथन था कि परमाणु जब संयोग करते हैं अथवा एक दूसरे से अलग होते है तो रासायनिक परिवर्तन होता है। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक इग्लंड के जॉन डाल्टन (John Dalton) का सिद्धान्त कि परमाणु पदार्थ का वह सब से छोटा कण है जो विभाजित नहीं हो सकता, सर्वमान्य रहा। परन्तु बीसवी शताब्दी के आरम्भकाल में जे० जे० थॉमसन तथा लार्ड रुदर फोर्ड ने सिद्ध किया कि परमाणु का विभाजन हो सकता है। जे० जे० थॉमसन इंगलैड के प्रसिद्ध भौतिक शास्त्री थे। इन्होंने दिखलाया कि विभिन्न रासायनिक तत्वों के परमाणुओं में कुछ धनविद्युतमय और ऋण विद्युतमय कण होते हैं जो आपस मे विद्युतीय आकर्षण के लाभ से एक दूसरे के निकट खड़े रहते हैं। थॉमसन की धारणा थी कि परमाणु धनविद्युतमय एक इकाई है जिसके भीतर ऋण-विद्युतमय कण तैरा करते हैं। ऋणविद्युत के कणों का उस ने नाम रखा इलैक्ट्रोन (Electron)। उसका कहना था कि ऋणविद्युत के कणों की कुल विद्युत धनविद्युत के कणों की कुछ विद्युत के बराबर होती है इसलिये परमाणु अपने अस्तित्व में विद्युत उदासीन रहता है इलैक्ट्रोन (Electron) परमाणु के भीतर इस प्रकार समाहित रहते हैं कि यदि उनमें से एक या अधिक कण निकाल दिया जाय तो पीछे धनविद्युतमय परमाणु अंश बच रहता है, जिसे (Positive-ions) कहा जाता है। दूसरी ओर जो परमाणु कुछ अन्य (Ele.trons) ले लेने में सफल हो जाते है उन में ऋणविद्युत बढ़ जाती है और उसे (Negative ions) कहा जाता है

थॉमसन ने पता लगाया कि एक इलैक्ट्रोन का भार हाईड्रोजन गैस के परमाणु का १/१८४० हिस्सा है। इस से यह सिद्ध होता है कि परमाणु का भार वास्तव में धन विद्युत के कणों पर आधारित रहता है।

सर जे० जे० थॉमसन का जीवन वृत्त काफी प्रतिभापूर्ण रहा है। इनका जन्म इंगलैंड में मैन्चैस्टर के निकट १८ दिसम्बर १८५६ ई० को हुआ था। छात्र जीवन के कुछ वर्ष इन्होंने मैन्चैस्टर के 'ओविन कॉलेज' में गुज़ारे।
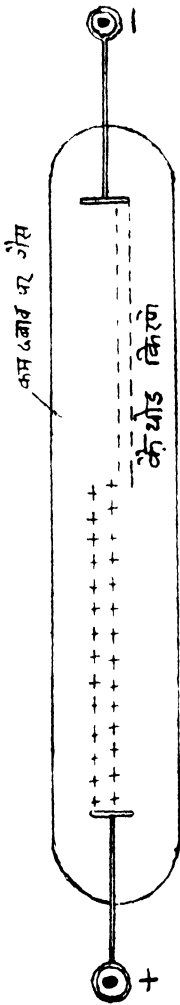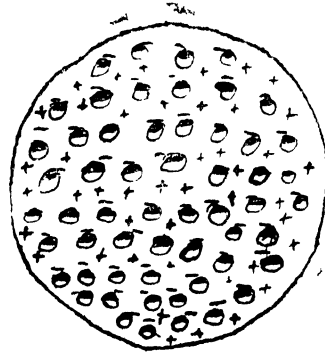
(थॉमसन के अनुसार परमाणु की संरचना)

कैथोड किरणें

बाद में कैम्ब्रिज के 'ट्रिनिटी-कॉलेज' में चले गये। १८८० ई० में यह कालेज के 'फैलो' चुन लिये गये।

सन् १८९७ ई० में इन्हों ने इलैक्ट्रोन का पता लगाया था। यह देखा जाता है कि हम किसी गैस को कम दबाव पर किसी विसर्ग नलिका में लें और यदि उसमें विद्युत प्रवाहित की जाय तो ऋण द्वारा कैथोड (Cathode) से एक प्रकार की नीली रश्मियों का समूह निकलता है। विलियम क्रुक्स (William Crookes) ने इन किरणों का नाम कैथोड रश्मियाँ (Cathode Rays) रखा। इन किरणों के स्वभाव के बारे में बहुतदिनों तक वाद-विवाद होता रहा। अन्त में सन् १८९७ में थॉमसन ने यह सिद्ध किया कि ये रश्मियाँ वास्तव में ऐसे सूक्ष्म कोण का पुंज हैं जिन में ऋण विद्युत रहती है। इन कणों का नाम थॉमसन ने इलैक्ट्रोन रखा।

इलैक्ट्रोन का पता लग जाने से परमाणु की वास्तविक बनावट का ज्ञान हो गया। और इसे इलैक्ट्रानिक मत (Electronic theory) कहा जाने लगा। इस सिद्धान्त से आधुनिक विज्ञान की नींव पड़ी।

कैथोड किरणों के गुण:— (१) कैथोड किरणें सरल रेखाओं में सीधे चलती हैं।
(२) इनके प्रभाव से कुछ पदार्थ दीप्तीमान हो उठते हैं।
(३) ये किरणें पतली पर्तों को बिना छिद्र युक्त बनाये पार कर डालती हैं।
(४) ये किरणें चुम्बकीय क्षेत्र में मुड़ जाती हैं।
(५) ऋण द्वार से निकलने के कारण इसके कणों में ऋण विद्युत रहती है।
(६) ये किरणें गैसों की आयनीकरण कर देती हैं।

यद्यपि जे० जे० थॉमसन की शोध काफी महत्वपूर्ण रही तथापि एक स्थान पर वह थाड़ा सा चूक गये। परमाणु की बनावट में उन्होंने बतलाया था कि परमाणु के भीतर धनविद्युत के कण समान रूप से बिखरे रहते हैं। यह बात आगे चल कर गलत हो गई। लार्ड रूदर फोर्ड ने १९११ में यह घोषणा की कि धनविद्युत परमाणु के केन्द्रक (Nucleus) में ही इकट्ठी रहती है और इलैक्ट्रोन इसके आस पास ही चक्राकर घूमते रहते हैं। अर्थात् परमाणु की बनावट सौर परिवार की भाँति है। स्थिर सूर्य के समान केन्द्रक (Nucleus) रहता है और ग्रहों के समान इलैक्ट्रोन उसकी परिक्रमा करते रहते हैं। एक आदर्श परमाणु की बनावट इस प्रकार होगी:—
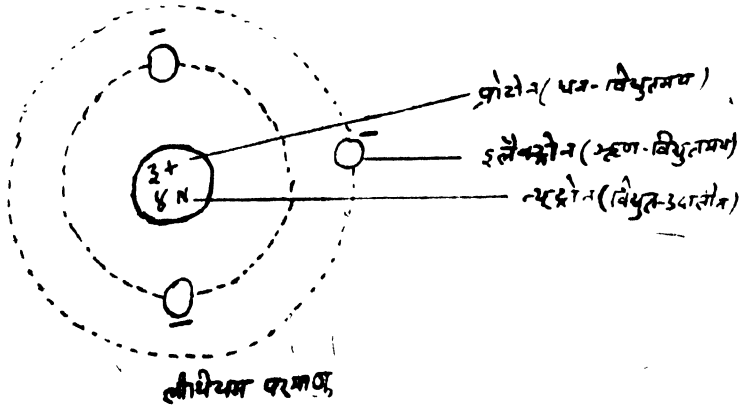
(लीथियम परमाणु)

इस भेद का पता भी रूदरफोर्ड को बड़े रुचिदायक ढंग से लगा था। एक बार प्रयोग करते समय उन्हें ज्ञात हुआ एल्फा कण किसी स्वर्ण की पर्त पर भेजने से कुछ तो सीधे ही निकल गये कुछ का मार्ग टेढ़ा पड़ गया और कुछ वापिस चले आये। एल्फा कण हीलियम के ऐसे परमाणु होते हैं जो धनविद्युतमय होते हैं क्योंकि इनमें से दो इलैक्ट्रोड निकाल दिये जाते हैं। इसलिये जब ये कण किसी

अन्य वस्तु के परमाणु मे टकराते हैं तो इन पर दो शक्तियाँ कार्य करती हैं। इलैक्ट्रोन विपरीत विद्युत के कारण इन्हें अपनी ओर आकर्षित करते है और केन्द्रक (Nucleus) समान विद्युत के कारण इन्हें हटाते है। इस से इस अनुमान की पुष्टि हो गई कि धनविद्युत केन्द्रक में स्थित है
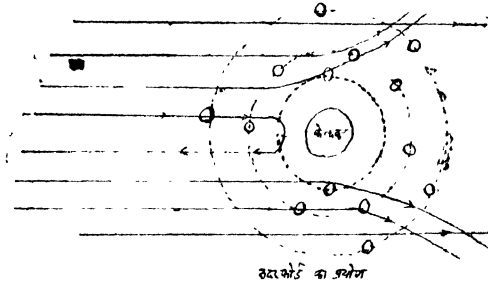
(रुदर फोर्ड का प्रयोग)

कुछ भी हो, जे० जे० थॉमसन द्वारा खोजे गये इलैक्ट्रोन 'एक्स किरणों' (X-rays) आदि का स्पष्टीकरण हो गया। साथ ही साथ आपने समधर्म-परमाणुओं (Isotopes) की खोज की। समधर्मी परमाणु उन्हें कहते है जिनके रासायनिक गुण एक समान होते हैं परन्तु जिनका परमाणु-भार थोड़ा भिन्न होता है।

आपने 'सैद्धान्तिक भौतिक-विज्ञान' में भी काफी योग दिया। ३० अगस्त १६४० को आप की मृत्यु हो गई।

मैन्डल और वंश परम्परा का सिद्धान्त

Mendel and theory of Heredity.

महान मनुष्यों को ख्याति शायद उनकी मृत्यु के बाद मिलती है। जीते जी तो उनको कोई पूछता भी नहीं। यही घटना जीव-शास्त्र के एक महान वैज्ञानिक ग्रिगॉर मैन्डल (Gregor Mendel) के साथ बीती। वह एक पादरी था आस्ट्रिया के बोहमिया (Bohemia) में। लगभग ८ वर्षों के कड़े परिश्रम से इसने वंश परम्परा के आधारभूत नियमों की खोज की। ब्रून (Brunn) नामक नगर की एक संस्था नेचुरल हिस्ट्री सोसाइटी (Natural History Society) को उसने अपनी खोजें बतलाईं जो एक पत्रिका प्रोसीडिंग्स (Proceedings) में १८६६ में प्रकाशित हो गई। परन्तु लगभग ३५ वर्षों तक किसी ने भी इस महान कार्य की खोज ख़बर न ली। उसकी मृत्यु के १६ वर्ष बाद सन १६०० ई० में एकाएक तीन वैज्ञानिक विभिन्न स्थानों से उन्हीं निष्कर्षों पर पहुँचे जिन पर मैन्डल बहुत पूर्व पहले ही पहुँच चुका था। तब जाकर उसका नाम और कार्य प्रकाश में आया। अब तो वंश परम्परा एक अलग शाखा बन गई है विज्ञान की, जिसे जैनिटिक्स (Genetics) कहते हैं।

मैन्डल के कार्य का अध्ययन करने के पूर्व वंश परम्परा क्या है, यह हमें समझ लेना चाहिये।

जब, जीव सन्तानोत्पत्ति करता है तो उसमें सबसे महत्तपूर्ण बात यह होती है कि क्या जीव ठीक अपने माता पिता के अनुरूप ही ढलेगा। उसमें अपने पूर्वजों का रंग, स्वभाव, आदि उसी ईमानदारी से उतर आयेंगे जैसे एक 'कार्बन-कापी।' यदि एक गाय दम्पत्ति से एक बछड़ा उत्पन्न होता है तो हम इस बात से बहुत आश्वस्त रहते हैं कि वह न तो खरगोश जैसा बनेगा और न ही हाथी जैसा। हमें यह भी विश्वास रहता है कि इसकी चार टाँगे रहेंगी, एक लम्बी पूंछ रहेगी, दो कान रहेंगे, दो आँखें रहेंगी। इसके अलावा भी बहुत छोटे छोटे से गुण होंगे जिनका सम्बन्ध हम उसके माता पिता से जोड़ सकते हैं या उसके बहुत पहले के पूर्वजों से जोड़ सकते हैं।

यह तो हम जानते ही हैं कि यह जीव दो जीवाणुओं के संयोग से बनता है और ये जीवाणु (शुक्र और रज) इतने सूक्ष्म होते हैं कि इनको हम नंगी आँखों से देख ही नहीं सकते। तो भला इतने सूक्ष्म जीवों में कैसे विशालकाय माता-पिता के गुण आ जाते हैं ?

इस प्रश्न का उत्तर दिया था मैन्डल ने। मैन्डल अपने मठ के बगीचे में अवकाश के समय कुछ प्रयोग करता रहता था। उसकी सफलता का कारण यह भी था कि इसने मटर के ही पौधे चुने क्योंकि इनमें सेचन क्रिया सुभीता पूर्वक करायी जा सकती है। मैन्डल ने प्रयोग करते समय एक बार में एक पौधे के एक गुण पर ही ध्यान दिया और अपने प्रयोगों के निष्कर्षों को सिलसिलेवार उतारता चला गया। और फिर उसने तीन नियमों की खोज की। नियमों का अध्ययन करने से पूर्व हम देखेंगे कि पूर्वजों के गुण किस रीति से सन्तानों में आते हैं।

जीव जब मैथुनिक सृष्टि करते हैं तो उस क्रिया में नर और मादा दोनों को भाग लेना पड़ता है। नर के शुक्रकीट (Sperm) और मादा के डिम्ब (Egg)
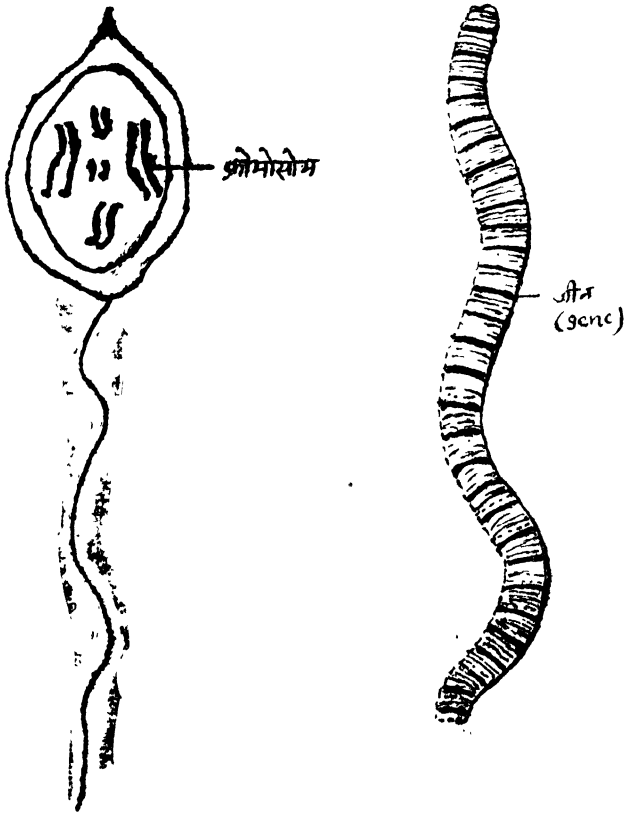
के संयोग के बाद नये जीव का आविर्भाव होता है। प्रत्येक शुक्रकीट या डिम्ब एक कोष (Cell) की भाँति होते हैं जिसमें केन्द्रक (Nucleus) होता है। इस केन्द्रक में कुछ लम्बे, बुने हुये धागे से रहते हैं जिनको क्रोमोसोम

(Chromosome) कहते हैं। प्रत्येक कोष में इन क्रोमोसोम की संख्या निश्चित होती है। अब प्रत्येक क्रोमोसोम में कुछ विशेष प्रकार के अदृशय कण होते हैं जो एक सिलसिलेवार क्रम में रहते हैं जैसे एक माला में दाने। इन कणों को जीन (Gene) कहते हैं। यह जीन ही, गुणों के लिये उत्तरदायी होते हैं अर्थात प्रत्येक जीन में कोई न कोई पूर्वजों का गुण विद्यमान रहता है।

मैन्डल ने प्रयोग करने के लिये दो प्रकार के मटर के पौधे लिये। एक शुद्ध जाति का लम्बा पौधा और दूसरा क्षुद्र, ठिगना पौधा। इन दोनों में उसने सेचन क्रिया करवाई। अब, जो पहली सन्तति हुई उसमें सभी पौधे लम्बे निकले। इन लम्बे पौधौ में उसने फिर "स्वयं सेचन" क्रिया होने दी और जब दूसरी सन्तति हुई तो उसमें लम्बे और ठिगने पौधों का अनुपात ३ : १ था अर्थात् हर तीन लम्बे पौधों के पीछे एक छोटा पोधा था।

मैन्डल ने फिर ऐसे दो पौधे लिये जिनमें दो दो गुणों की विभिन्नता थी। उसने एक मटर का ऐसा पौधा लिया जिसके बीजपत्र (Cotyledons) पीले थे और उसके बीज गोल थे। दूसरे मटर के पौधे में हरे बीज-पत्र थे तथा बीजों मे झुर्रियां पड़ी हुई थीं। उन दोनों में सेचन क्रिया करवाने पर पहली सन्तति तो ऐसी हुई जिसमें सभी पौधों के बीज पत्र पीले थे और बीज गोल थे परन्तु स्वयं सेचन क्रिया करवाने पर दूसरी सन्तति से चार प्रकार के पौधे निकले। पहले

(मैन्डल का पहला प्रयोग)

प्रकार के पौधों के बीच पत्र पीले थे और बीज गौल। दूसरे प्रकार के पौधों में बीजपत्र तो पीले थे परन्तु बीज झुर्रीवाले। तीसरे प्रकार के पौधे में बीजपत्र हरे थे और बीज गोल तथा चौथे प्रकार के पौधे में बीजपत्र हरे थे तथा बीज

झुर्रीवाले। अर्थात् पहले और चौथे प्रकार के पौधे तो अपने सबसे पूर्व के पूर्वजों से मिलते थे और बीच के दो प्रकार के पौधों में एक दूसरे के गुण आपस में मिल गये थे। इन चारों पौधों में अनुपात था ९ : ३ : ३ : १। इन दोनों उदाहरणों को हम चित्र द्वारा यों समझ सकते हैं।

(मैन्डल का दूसरा प्रयोग)
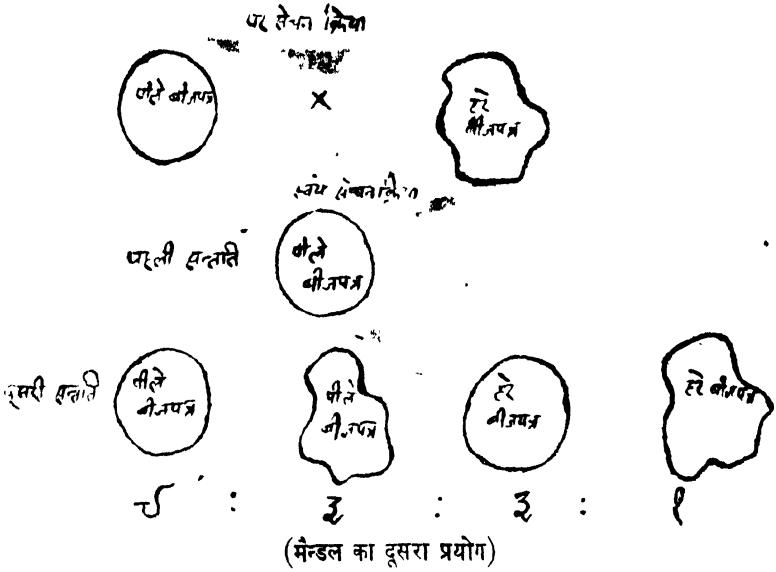
इन दोनों प्रयोगों के निष्कर्षों से उसने जो तीन नियम निकाले वे निम्न-लिखित हैं:—

(१) **प्रभुत्व का नियम** (Law of Dominance) :— मैन्डल ने बतलाया कि कुछ गुण प्रबल होते हैं जो उसी प्रकार के दूसरे गुण पर अपना प्रभाव डाल देते हैं और उसें प्रकट होने से रोक देता है। प्रबल गुण को उसने Dominant Character कहा तथा कमज़ोर गुण को Recessive Character कहा। पहले प्रयोग में हम देख चुके हैं कि मटर का लम्बा पन, प्रबल गुण है तथा ठिगना पन, कमज़ोर गुण इसलिये पहली सन्तति में सभी पौधे लम्बे हुये, अर्थात् लम्बेपन के गुण ने ठिगनेपन के गुण को ढक लिया। यह कमज़ोर गुण तभी तक ढके रहते हैं जब तक कि उसके निकट प्रबल गुण रहें और ज्यों ही प्रबल गुण हट जाता है त्यों ही कमज़ोर गुण प्रकट हो जाता है।

(२) **पृथकीकरण का नियम** (Law of Segregation):— इस नियम के अनुसार दूसरी सन्तति में गुण अलग अलग हो जाते हैं। एक बीजाणु में केवल एक ही गुण रहता है, दोनों साथ साथ नहीं रह सकते। एक बीजाणु में केवल लम्बेपन

का गुण रहना है या ठिगने पन का। इसलिये पहले प्रयोग की जब दूसरी सन्तति होती है तो उसके दोनों प्रकार के जीवाणु अलग अलग गुणों को लेकर पृथक हो जाते हैं कौर फिर वे स्वतन्त्र हम से मिलते हैं। इसलिये दूसरी सन्तति में ठिगना पौधा फिर प्रकट हो जाता है।

(३) **स्वतन्त्र रूप से चयन करने का गुण** (Law of Independent Assortmnent) :— इस नियम में यह बतलाया गया है कि जब माता और पिता के विभिन्न गुण एक दूसरे के निकट आते हैं तो वे स्वतन्त्रता पूर्वक एक दूसरे से मिलते हैं। दूसरे प्रयोग की दूसरी सन्तति को देख कर यह समझा जा सकता है। इसमे दो दो गुण एक दूसरे से स्वतन्त्रता पूर्वक मिले हैं और यह मिलान केवल चार प्रकार से हो सकता है इसलिये चार प्रकार के पौधे उत्पन्न हुये।

मैन्डल के इन नियमों की खोजों से मनुष्य जाति को बहुत लाभ पहुंचा है। जीवों और पौधों के गुणों का अध्ययन करके यह पता लगाया जा सकता है कि इनके कौन से गुण मनुष्य को लाभदायक है और कौन से हानिकारक। और फिर उनमें सेचन क्रिया या क्रास करवा के लाभदायक गुणों की हम उन्नति कर सकते है तथा हानिकारक गुणों को नष्ट करवा सकते हैं। उदाहरणार्थ, गेहूं में एक ऐसी अवरोधक जाति उत्पन्न की गई है जिसके दाने बहुत मोटे होते है तथा जिस पर किसी रोग का आक्रमण नहीं होता। इसी प्रकार हम एक ऐसी भेड़ उत्पन्न कर सकते है जिसमें अच्छी ऊन पैदा हो तो माँस की मात्रा भी अधिक रहे।

इन नियमों से मनुष्यों के वैवाहिक जीवन को भी प्रभावित किया जा सकता है। जैसे विवाह सम्बन्धी एक समिति का निर्माण किया जाये जो ऐसे विवाह कराये जिसमें वर या वधु के पास प्रबल गुणो की प्रचुरता रहे ताकि सन्तानो में वह गुण आ जायें। जैसे भूरी आँखें नीली आँखों को ढक सकती है। घुंघराले बाल सीधे बालो पर प्रभुत्व जमा सकते है।

डारविन और विकास
(Darwin and Evolution)

विश्व की विचार धारा को सामूहिक रूप से प्रभावित करने वाले तीन महान व्यक्तियों में (फ्रायड, कार्ल मार्क्स और डारविन) में सबसे अधिक क्रान्ति उत्पन्न की है डारविन ने। आज से लगभग सौ वर्ष पूर्व इस वैज्ञानिक ने अपने मौलिक सिद्धान्तों से सारे धार्मिक विश्वासों और पुरानी आस्थाओं पर कुठाराघात करके एक नयी विचारधारा 'विकास' को जन्म दिया। आज का जीव-विज्ञान जितना उनका आभारी है शायद और किसी का नहीं।

डारविन का जन्म १८०६ ई० में हुआ था। प्रारम्भिक जीवन में वह कोई प्रतिभाशाली छात्र नही था। मानसिक विकास उसका बड़ी देर से हुआ था। स्कूली जीवन में वह बड़ा सुस्त माना जाता था। हाँ वंश उसका वैज्ञानिक वातावरण में पला था। उसका पिता तथा पितामह दोनों ही चिकित्सक थे। उसके घरवाले तो उसे भी चिकित्सक बनाना चाहते थे परन्तु उसका झुकाव प्राकृतिक विज्ञान की ओर था। जब वह कैम्ब्रिज में पढ़ रहा था तो उस समय एक कैप्टन फिट्जराय (Fitzroy) को एक ऐसे युवक की आवश्यकता पडी जो उनके साथ संसार का भ्रमण कर सके। डारविन एकाएक उनकी नजरों में चढ़ गया क्योंकि प्राकृतिक विज्ञान के प्रति इसकी लगन और आस्था असीमित थी। यह बात है सन १८३१ की। अपनी इस यात्रा के पाँच वर्षो में डारविन को विभिन्न प्रकार के जीवों, और पौधों का निकट से अध्यन करने का अवसर मिला। दक्षिणी अमरीका, जब वे पहुँचे तो वहां के विशिष्ट प्रकार के जीवों और जीव–अवशेषों को देख कर उसके मन में पहली बार जीव-विकास के सिद्धान्त की शक्ल ग्रहण करने लगे। जब डारविन गेलापेगोस (Galapagos) द्वीपों में पहुंचा जो दक्षिणी अमरीका से ६०० मील दूर प्रशान्त सागर में हैं तो वहां के एक अफसर ने एक स्थानीय जाति के भीमकाय कछुए का वर्णन किया और बतलाया कि यहाँ के विभिन्न द्वीपो में अलग अलग प्रकार के कछुए रहते हैं जिनके खोल को देखकर यह बतलाया जा सकता है कि यह कौन से द्वीप का है। एक ही जाति के जीव में थोड़ी सी मात्रा की विभिन्नता को देखकर डारविन को एकाएक सूझा कि ये सब एक ही पितृवंश से निकले होंगे। इस घटना के पश्चात इंगलैन्ड आने पर उसने लगभग बीस वर्षों तक गहन अध्ययन किया तथा अन्त में अपनी धारणाओं और मान्यताओं को पुस्तकाकार प्रकाशित करवाया। यह पुस्तक "जाति की उत्पत्ति" (Origin of Species) १८५६ में प्रकाशित हुई थी।

अपनी पुस्तक के प्रकाशन के पूर्व डारविन को मैल्थस की जन-गणना संबंधी गवेषणा से प्रेरणा मिली थी। एक और आश्चर्य जनक घटना हुई। डारविन का प्रबंध प्रकाशित होने से पूर्व बिल्कुल स्वतन्त्र रूप से एक अन्य वैज्ञानिक एलफ्रेड रसेल वालेस (Alfred Russel Wallace) भी उसी निष्कर्ष पर पहुंच गया। खैर डारविन ने यहां एक अच्छे वैज्ञानिक हृदय का परिचय दिया और बिना किसी भेदभाव के उसकी मान्यताओं को भी प्रकाशित होने दिया। इसलिये, विकास के सिद्धान्तों का कुछ श्रेय वालेस को भी दिया जाता है।

डारविन विकासवाद की संक्षिप्त रूप रेखा इस प्रकार है:—

१. **विभिन्नतायें** (Variations):— सभी जीवित प्राणी थोड़ी थोड़ी विभिन्नता बतलाते हैं। कोई भी दो जीव समान नहीं हैं। विभिन्नता से विकास का क्रम बढ़ता है। क्योंकि जो विभिन्नता प्रकृति के अनुकूल होगी उस जीव को जीवन संघर्ष कम करना होगा और वह विभिन्नता अगली सन्तानों में उतर आयेगी और जो विभिन्नता प्रकृति के प्रतिकूल होगी वह अपने आप नष्ट हो जायेगी और उस जीव का वंश वहीं समाप्त हो जायेगा। विभिन्नतायें भी दो प्रकार की होती हैं एक तो वे जो साधारण होती हैं तथा एक सन्तान से दूसरी सन्तान में आ जाती हैं। दूसरी वे जो अचानक प्रकट हो उठती हैं इनको Mutations कहते हैं।

२. **अति उत्पत्ति** (Over Production):— मनुष्य को छोड़ कर अन्य जीवों में सन्तोनोत्पति की शक्ति बहुत अधिक होती है। कुछ जीव इतनी अधिक मात्रा में अपनी सन्तानें उत्पन्न करते हैं कि यदि उनकी सभी सन्तानें जीवित रह जयां तो कुछ ही वर्षों में यह सारी पृथ्वी एक ही जाति के जीवों से आच्छादित हो जाये। एक प्रकार की सीप एक मौसम में ६ करोड़ अन्डे उत्पन्न करती है। यदि यह सभी अन्डे सीपों में उत्पन्न हो जायें तो पाँच वर्षों के भीतर ही इतने सीप हो जायेंगे कि इस पृथ्वी के आठ गुना अधिक स्थान घेरने का स्थान मांगेंगे। एक विशेष प्रकार की मछली (Congo Eel) एक ऋतु में एक करोड़ पचास लाख अन्डे दे देती है। एक प्रकार की फफूँदी दो अरब, एक समय में बीजाणु उत्पन्न कर सकती है। और तो और, हाथी जैसा जीव जो बहुत कम अपनी सन्तान उत्पन्न करता है और जो तीस वर्ष की आयु से अपनी सन्तान उत्पन्न करना प्रारम्भ करता है तथा मादा दस वर्ष में एक ही बार बच्चा उत्पन्न करती है वही एक जोड़ा यदि ९० वर्ष तक जिये तो ७५० वर्षो में उसके वंश में एक करोड़ ९० लाख सन्तानें हो जायेंगी। और यदि हम छोटे प्राणियों का उदाहरण लें तो ज्ञात होगा कि एककीटाणु आधे घन्टे में २४८ कीटाणु उत्पन्न कर लेता है। परन्तु इन सभी जीवों के लिये भोजन और स्थान की मात्रा पर्याप्त नहीं होती इसलिये उनमें जीवन-संघर्ष प्रारम्भ हो जाता है

३. **जीवन-संघर्ष** (Struggle for existence):— प्रत्येक जाति में जीवित रहने के लिये जो संघर्ष उत्पन्न हो जाता है उसे, जीवन संघर्ष कहते हैं। यह संघर्ष जीवन की किसी भी अवस्था में हो सकता है। प्रत्येक पेड़ की छाया के नीचे नये बीजाँकुरों में संघर्ष उत्पन्न हो जाता है। उन्हें प्रकाश चाहिये, वायु चाहिये, जल चाहिये और स्थान चाहिये और ये वस्तुऐं प्रत्येक अकुंर को जीवित रखने के लिये पर्याप्त नहीं होतीं। इमी प्रकार विभिन्न जातियों में भी संघर्ष होता है। बलशाली अपने से छोटे जीव को भोजन बना लेता है। बड़ी मछली छोटी मछली को निगल जाती है। चूहे को बिल्ली खाती है। बिल्ली के पीछे कुत्ता भागता है कुत्ते का शत्रु भेड़िया है। भेड़िये का शत्रु बाघ है और बाध को आदमी जीवित नहीं छोड़ता।

४. **प्राकृतिक चयन** (Natural Selection or Survival of the fittest):— यह पहले भी बताया जा चुका है कि जीवन संघर्ष में केवल वही जीवित रह पाते हैं जो वातावरण के अनुकूल हो जाते हैं और फिर यह गुण दूसरी पीढ़ी तक पहुँचा दिया जाता है इस प्रकार प्रकृति चयन करती है और जो गुण उसकी इच्छा के माफ़िक नहीं होते वे नष्ट हो जाते हैं और जो गुण लाभदायक होते हैं उनकी उन्नति होती रहती है। डारविन ने कई उदाहरणों को इकट्ठा कर के यह सिद्ध किया कि प्रकृति स्वयं विभिन्नतायें उत्पन्न करवाती है।

प्राकृतिक चयन के पक्ष में कुछ तर्क:—

(१) घरेलू जातियाँ कृत्रिम चयन द्वारा उत्पन्न की गई हैं। इसी शैली से प्रकृति भी अपना चुनाव करती है।

(२) पुरातन काल में बहुत बड़े बड़े जीव रहा करते थे परन्तु स्थान और भोजन की कमी के कारण वे सब लुप्त हो गये।

(३) आस्ट्रिया-हँगरी में दो हजार फुट की एक पट्टी है जिस को आठ भागों में विभाजित किया जा सकता है पहले भाग से अन्तिम भाग तक बिना खोल से खोल वाले घोंघे की सभी क्रमानुसार अवस्थायें मिलती हैं जो यह सिद्ध करती हैं कि प्रकृति के अनुकूल उस जीव में विभिन्नता आती जा रही है।

(४) घोड़ों के पूर्व वंशज चार खुर वाले थे। आज कल क घोड़ों में केवल एक ही खुर बचा है।

प्राकृतिक चयन के सिद्धान्त की आलोचना भी काफी हुई है। इस सिद्धान्त से हम अंग-अवशेषों और कार्य-विहीन अंग का होना नहीं समझा सकते। दूसरी बात यह है कि यदि नई जाति की उत्पत्ति प्राकृतिक चयन से हुई है तो जोड़ने वाले सूत्रों की अनुपस्थिति क्यों है।

पास्त्योर और कीटाणु

(Pasteur and Microbes)

लुई पास्त्योर को कीटाणु-विज्ञान का प्रणेताऔर जनक कहा जाता है। वे सच्चे वैज्ञानिक थे। एक बहुत छोटे से परिवार में जन्म लेकर अपने अध्यवसाय, लगन, और परिश्रम से वह एक महान वैज्ञानिक बन गये। विज्ञान के प्रति उनके मन में इतनी श्रद्धा थी कि एक स्थान पर उन्होंने लिखा है—"मैं विनती करता हूँ सब लोगों से कि वह उन पवित्र स्थानों में, जिन्हें हम प्रयोगशाला कहते हैं कुछ रुचि लें................वहाँ मनुष्यता महान बनती है, और सुन्दर बनती, और सशक्त होती है।" एक स्थान पर उसने कहा है कि विज्ञान मनुष्य को प्रभु के निकट ले आता है।

उसका पिता एक साधारण चमड़ा कमाने वाला (Tanner) था। ये लोग फ्रांस के जूरा (Jura) पर्वतों के पास रहते थे। इसके पिता कुछ समय नेपोलियन की सेना में सार्जेन्ट मेजर भी रह चुके थे। पास्त्योर का जन्म १८२२ में हुआ था। बालपन में वह कोई तीक्ष्ण बुद्धि वाला लड़का नहीं था। मैट्रिक की परीक्षा में उसे रसायन शास्त्र के पर्चे में बहुत कम नम्बर मिले थे। परन्तु उसकी इच्छा शक्ति बहुत दृढ़ थी। उसमें काम में लगे रहने की अथक लगन थी। यह कुछ लजीला, एकान्तसेवी था। इस पर मुसीबतें भी बहुत आईं। परन्तु सत्य के अन्वेषण में यह सतत लगा ही रहा। कहते हैं कि इसकी तीन बेटियाँ भरपूर जवानी में चल बसीं। ४६ वर्ष की आयु में इसके मस्तिष्क की एक धमनी में रक्त जम गया जिससे शरीर के एक भाग में पक्षाघात हो गया। इसके पूर्व इसका डाक्टर इससे कह चुका था कि यदि वह अपने छोटे से गर्म मकान में ही काम करता रहा तो उसे लकवा मार जायेगा किन्तु पास्त्योर ने उत्तर दिया, "डाक्टर! मैं अपने कार्य को नहीं छोड़ सकता, मैं अपने लक्ष्य के निकट पहुँच चुका हूँ। मुझे खोज की पूरी होने की आशा बँधने लगी है। कुछ भी हो मैं अपना कर्तव्य पूरा करके ही जाऊँगा।" और सचमुच इस घातक बीमारी पर विजय पाकर उसने जीव-विज्ञान को अपनी अनमोल सेवाएँ भेंट कीं।

पास्त्योर ने वैसे चिकित्सा विज्ञान पर ही अहसान किये हैं परन्तु वह चिकित्सा विज्ञान का आदमी नहीं था। मूलत: वह एक रसायनज्ञ था। २६ वर्ष की छोटी सी आयु में उसने शीर्ष-वैज्ञानिकों में अपना स्थान बना लिया था। रॉयल सोसाईटी आफ लन्दन (Royal Sociely of London) ने उसे रमफोर्ड (Rum ford) मैडल देकर उसका सम्मान किया।

कीटाणुओं के सम्बन्ध में उसने मुख्यतः तीन बातें बतलायी हैं:— पहली चीज तो उसने यह बतलायी कि कुछ कीटाणु जो एक कोषीय प्राणी होते हैं वे शराब और बियर को खराब कर देते हैं और इसे रोका जा सकता है जब द्रव्य किसी एक स्थिति पर गर्म किया जाय। उसने यह भी सिद्ध किया कि ईस्ट (Yeast) एक कोषीय प्राणी है। फिर उसने बतलाया कि कीटाणुओं से रेशम का कीड़ा गाय, भेड़, पुरुष और स्त्रियाँ भी रोग ग्रसित हो सकती हैं। तीसरा उसने बतलाया यदि कमजोर कीटाणुओं (Weakened Germs) का टीका (Vaccine) बनाया जाय और उसे किसी प्राणी के शरीर में प्रविष्ट कराया जाये तो उसी रोग के कीटाणु फिर आक्रमण नहीं कर सकेंगे। यह टीका रक्त में पहुंच कर एक पदार्थ एन्टीटीकसिन (Antitoxin) उत्पन्न करता है जो कीटाणुओं को नष्ट कर देता है।

वैसे कीटाणुओं को खोजने का श्रेय वान लीवेनहॉक (Van Leeuwenhock) को है जिसने सत्रहवीं शताब्दी के अन्त में स्वयं निर्मित सूक्ष्म दर्शक यन्त्र द्वारा बहुत ही छोटे छोटे जीवाणुओं को देखा था परन्तु उसे यह सुझाई नहीं दिया था कि यह बीमारी भी उत्पन्न कर सकते हैं यद्यपि अपने से भी जीवाणु उसने निकलते हुये देखे थे। १५४६ में पादुआ (Pddua) के वैज्ञानिक फ्राकैस्ट्री (Fracastro) ने अवश्य सोचा था कि रोगों का कारण कोई जीवित पदार्थ है परन्तु रोगों का सम्बन्ध कीटाणुओं से जोड़ने का श्रेय लुई पास्त्योर को ही जाता है।

लुई पास्त्योर के समय परिस्थितियों ने भी उसकी बड़ी सहायता की। १८३० में तीन मुख्य बातें सामने आ चुकी थीं। एक तो सूक्ष्मदर्शक यन्त्र में बहुत सुधार हो चुका था। दूसरा फ्रांस और जर्मन के वैज्ञानिकों ने घोषणा कर दी थी कि ईस्ट (Yeast) एक जीवित कोष है जो वनस्पति शास्त्र का ही एक अंग है और शक्कर का कार्बनडाइ आक्साइड और अल्कोहल में परिवर्तन (Fermenttation) इसी ईस्ट से ही होता है। ईस्ट को हमारे यहाँ खमीर भी कहते हैं। तीसरा, इटली के वैज्ञानिक बैसी (Bassi) ने बतलाया कि रेशम के कीड़ों की एक खास बीमारी किसी एक जीवाणु के कारण होती है।

उन्हीं दिनों शराब के व्यापारियों को विशेष नुकसान उठाना पड़ रहा था क्योंकि शराब तैयार होने के पूर्व ही खट्टी और लसलसी हो जाती थी। भेड़ों और गायों में भी एक शिेष प्रकार की बीमारी फैलती जा रही थी।

जब पास्त्योर लिली (Lille) में १८५४ में प्रोफेसर और डीन (Dean) लगे तो वहाँ के एक व्यापारी ने इनसे यह ज्ञात करने के लिये कहा कि इस शराब में यह खट्टापन और लसलसापन क्यों हो जाता है। पासयोर ने पता लगाया कि शराब में एक प्रकार का कीटाणु शक्कर को लैक्टिक एसिड (Lactic Acid)

में परिवर्तित कर देता है। यह एक प्रकार का (Fermentation) है। और यह शराब को एक खास स्थिति पर गर्म करने से रोका जा सकता है। सचमुच इससे व्यापारियों को करोड़ो रुपयों का लाभ हो गया और पूरे फ्रांस तथा उसके बाहर पास्त्योर का नाम फैल गया। यही विधि आगे चलकर पैश्चेराईज़ेशन (Pasteurisation) कहलाई। आजकल दूध इसी रीति से कीटाणु रहित किया जाता है।

इसी सिद्धान्त से प्रभावित होकर एक प्रसिद्ध सर्जन लिस्टर (Lister) ने सोचा कि शायद उसके रोगियों के घाव इसलिये सड़ जाते हैं क्योंकि उसमें कीटाणु प्रवेश कर जाते होंगे। उसने घावों को कार्बोलिक ऐसिड (Carl olic acid) से जो एक निःसंक्रामक है धोना शुरू किया और उससे उसे आश्चर्यजनक सफलता मिली। घाव एकाएक ही जल्दी ठीक हो गये। सन् १८६५ ई० में इसने रेशम के कीड़ों की बीमारी पर खोज करनी आरम्भ की और लगातार ६६ वर्ष तक वे इस कार्य में लगे रहे और अन्त से इसका निदान खोज ही निकाला। भेड़ों और गायों को संहार करने वाला एन्थेक्स (Anthrax) बीमारी का भी इलाज इन्होने ढूंढ लिया।

पागल कुत्ते से काटने का भी इलाज इन्होंने १८८५ में जोसेफ मीस्टर (Joseph Meister) नामक एक लड़के का किया और वह कुछ ही दिनों में भला चंगा हो गया।

लुई पास्त्योर को केवल दो ही चीजों से प्रेम था। एक तो अपने देश फ्रांस से और दूसरा विज्ञान से। यह इतने देश प्रेमी थे कि नेशनल गार्ड में भरती हो गये थे और एक दिन इन्होंने १५० फ्रांक (फ्रांसीसी सिक्कन) की अपनी पूरी दौलत एक वेदी पर चढ़ा दी। सन १८७० ई. में जब फ्रांस की जर्मनी से लड़ाई हुई तब इन्होंने बौन विश्वविद्यालय द्वारा दिया हुआ डिप्लोमा भी लौटा दिया। उनके आत्माभिमान ने यह स्वीकार नहीं किया कि वह शत्रु देश के विश्वविद्यालय से सम्मान प्राप्त करें।

लुई पास्त्योर की सफलताओं में उसकी पत्नी का बहुत सहयोग रहा है। वह बहुत ही समझदार गृहणी थी। दुःख सुख में उन्हें सदा प्रोत्साहन देती रही। सुनते हैं कि जब लुई पास्त्योर के विवाह की तिथि निश्चित हो गई थी तो यह भले आदमी प्रयोगशाला में कार्य करते करते अपने जीवन के सबसे महत्वपूर्ण दिन को भी भूल बैठे। इसी घटना से मैडेम पास्त्योर ने इनकी प्रकृति समझ ली और इनके खाने पीने आदि का सारा भार अपने ऊपर ले लिया।

पास्त्योर का नाम सदा उज्जवल रहेगा।
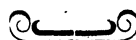
हार्वे और रक्त संचालन १५७८–१६६७
(Harvey and Blood Circulation)

विलियम हार्वे का नाम चिकित्सा विज्ञान में बहुत ही आदर से लिया जाता है। १६२८ में हार्बे की महत्वपूर्ण पुस्तक एन एनाटॉमिकल ट्रियटाईज़ ऑन दी मूवमेन्ट ऑफ दी हार्ट एन्ड दी ब्लड (An Anatomical Treatise on the Movement of the Heart and the Blood) के प्रकाशन से चिकित्सा विज्ञान की नींव पड़ी।

जिस समय हार्वे ने अपना कार्य यूरोप में प्रारम्भ किया उस समय वहाँ के लोग पुरानी मान्यताओं से इस प्रकार चिपके हुये थे कि कोई भी यह सहन नही कर सकता था कि कोई दूसरा वैज्ञानिक अरस्तु (Aristotle) की दार्शनिकता को चुनौती दे। यूरोप के लोगों के मस्तिष्कों पर लगभग १००० वर्षों तक अरस्तु और ग्रीक वैध गेलेन (Galen) बुरी तरह छाये रहे। सचमुच यह बड़ी दुस्साहस की बात थी जो हार्वे ने अपने अवलोकन, प्रयोग द्वारा प्रकृति से सीधे सम्बन्ध स्थापित कर नयी मौलिक विचार धाराओं को जन्म दिया।

हार्वे का जन्म १५७८ ई० में हुआ था। इनके माता पिता फोकस्टोन गाँव में रहते थे। ग्रामर स्कूल में पढ़ने के बाद यह कैम्ब्रिज के कैयस (Caius) कॉलेज में चले गये। वहाँ से फिर वह पादुआ (Padua) में आ गये।

हार्वे के समय, १५४३ में एक ही माह में विज्ञान-जगत में उथल-पुथल मच गई थी। कौपरनिकस और गैलीलियो की मान्यताओं ने एक बहुत गर्म वातावरण उत्पन्न कर दिया था। विजेलियस (Vesclius) ने अपनी पुस्तक दी स्ट्रक्चर ऑफ ह्यूमेन बॉडी (The structure of human body) में वास्तविक चीड़ फाड़ कर के चित्रों सहित आन्तरिक अंगों की बनावट का दिग्दर्शन कर दिया था। और हार्वे के अध्यापक फैब्रीसियस (Fabricius) ने सर्वप्रथम शिराओं के कपाट के बारे में पता लगा दिया था जिस के कारण आगे चल कर हार्वे को अपना रक्त-संचालन संस्थान सिद्ध करने में बड़ी सहायता मिली।

जब हार्वे अपना अध्ययन समाप्त करके घर लौटा तो लन्दन में प्रेक्टिस करने के लिये जम गया। फिर इसने महारानी एलीज़ाबेथ के निजी डॉक्टर की सुपुत्री से विवाह कर लिया।

फिर यह सेन्ट बार्थोलोम्यू (St. Bartholomew's) के हस्पताल में एक डॉक्टर की हैसीयत से नियुक्त हो गये। यहाँ जम कर बैठके इन्होंने अपने कार्य को आगे बढ़ाया। रोगों के बारे में पूर्व निर्धारित आदेशों पर न चल कर अपने प्रयोगों द्वारा इन्हों ने नये नये इलाज खोज निकाले। उनका कहना

था, "मेरा अध्ययन पुस्तकों से नहीं, चीर फाड़ (Dissection) से होता है। प्रकृति के खजानों को खोजने के लिये हम दूसरे व्यक्तियों की सूचनाओं पर आश्रित रह कर स्वयं उसका रहस्योद्घाटन नहीं कर सकते। प्रकृति से सीधा सम्बन्ध जोड़ कर, उस से मित्रता स्थापित करके ही हम कुछ नई चीज खोज सकते हैं।"

हार्वे के पूर्व ग्रीक डॉक्टर गैलेन का हृदय और रक्त प्रवाह के बारे में निर्धारित सिद्धान्त यह था कि भोजन का महत्वपूर्ण अंश आमाशय और आँतों में मथित होने के बाद पोंटल शिरा (Portal vein) द्वारा यकृत में पहुँचा दिया जाता है जहाँ वह किसी अज्ञात क्रिया के प्रभाव से रक्त का रूप ले लेता है। और वहाँ से एक बहुत बड़ी शिरा वीना केवा (Vena Cava) द्वारा हृदय के दायें भाग में पहुँच
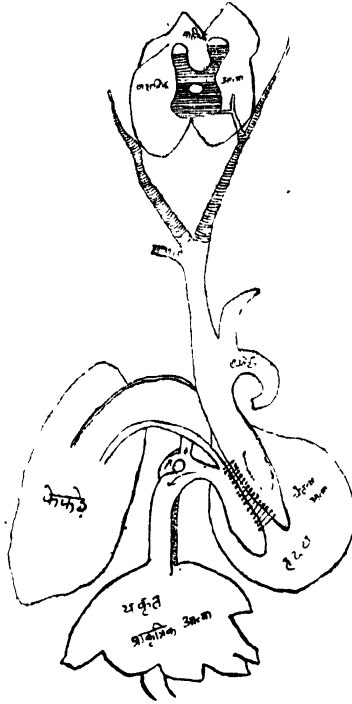
(गैलेन के अनुसार रक्त प्रवाह का संस्थान)

जाता है। हृदय जब फूलता है तो रक्त उसके भीतर प्रवेश कर जाता है और जब वह सिकुड़ता है तो उसी शिरा द्वारा बहुत सा रक्त वापिस शरीर में भ्रमण हेतु आ जाता है कुछ रक्त धमनी के द्वारा फेफड़ों में चला जाता है। इस प्रकार रक्त का प्रवाह मुख्यतः हृदय के दायें भाग से ही सम्बन्धित रहता है। सब से अजीब और आधार हीन बात इस विवरण में यह थी कि रक्त दायें भाग से बायें भाग में

किस प्रकार पहुँचता है। गैलेन का विचार यह था कि हृदय के दोनों भागों के बीच एक मांस पेशी की मोटी पर्त थी जिसमें छोटे छोटे छिद्र थे। इन छिद्रों से रक्त दायें भाग से बायें भाग में आ जाता था। और भी न जाने कैसी कैसी अनर्गल बातें थीं जैसे कुछ आत्माओं के अंश भी इसी संस्थान से सम्बन्धित बतलाये गये थे और यह भी कहा जाता था कि हृदय वायु को भी ग्रहण करता है।

हार्वे को गैलेन की इस परिभाषा से सन्तोष नहीं हुआ। वह स्वयं ही प्रयोग करने लगे। ब्रिटिश संग्रहालय में उसकी पान्डुलिपि के नोट्स बतलाते हैं कि उसने इस समय के बीच लगभग ८० विभिन्न जातियों के जीवों को चीरा फाड़ा। अपने अध्ययन के लिये मछली, मेंढक और छिपकली उसे अधिक अनुकूल प्रतीत हुये। इन जीवों की मृत्यु के एकाएक बाद भी इनका हृदय धड़कता रहता है यद्यपि इस की गति बहुत धीमी हो जाती है परन्तु तब भी उसके द्वारा रक्त के आने-जाने का मार्ग जाना जा सकता है। हार्वे ने देखा कि हृदय जब सिकुड़ता है तो पहले उसका ऊपरी भाग अर्थात ग्राहक कोष्ठ (Auricles) सिकुड़ते हैं और अपना सारा रक्त क्षेपक कोष्ठ (Ventricles) को दे देते है। फिर क्षेपक कोष्ठ सिकुड़ते हैं और अपना रक्त एओरटा (Aorta) और पलमोनरी धमनी (Pulmonary Artery) को दे देते है। एओरटा से रक्त शरीर का भ्रमण करने के लिये निकल पड़ता है तथा दूसरी नली से रक्त फेफड़ों में शुद्ध होने के लिये चला जाता है। हार्वे ने पता लगाया कि हृदय के भीतर कपाट (Valve) लगे हुये है जो रक्त को केवल एक ही दिशा में बहने के लिये प्रेरित करते हैं। फिर हार्वे को ज्ञात हुआ कि यदि हम किसी धमनी को एक पट्टी से कसकर बाँध दें तो वह हृदय की दूसरी दिशा की ओर खाली हो जायेगी, यह बतलाते हूए कि रक्त हृदय से शरीर की ओर बह रहा है। उधर शिराओं में ऐसे कपाट लगे हुये होते हैं जो रक्त को हृदय की ओर बहने में तो सहायता देते हैं परन्तु वापिस लौटने में अड़चन डालते हैं। इसका विपरीत हाल धमनियों में था। फिर उसने देखा कि जब किसी रोगी की नस फट जाती है तो रक्त बहता रहता है और जब तक कृत्रिम रूप से उस पर पट्टी बांध कर रोका नहीं जाय या उस पर स्वयं पपड़ी न जम जाय तब तक उसका प्रवाह रुकता नहीं। इससे यह निष्कर्ष निकलता था कि रक्त सदा बहता रहता है। फिर उसने प्रत्येक धड़कन से निकले हुए रक्त की मात्रा का अन्दाज लगाया तथा प्रत्येक मिनट की धड़कनों का हिसाब निकालकर देखा कि हृदय आधा घन्टे में धमनियों को इतना रक्त भेज देता है जो पूरे शरीर की रक्त की मात्रा से अधिक होता हैं। उसने तर्क किया कि गैलेन के अनुसार यदि भोजन के रस से रक्त बनता है तो यह कैसे सम्भव है कि इतने अल्प समय में रक्त बन कर हृदय में पहुंच जाय। इसका केवल एक ही उत्तर हो सकता है कि रक्त

धमनियों से शिराओं में पहुँचने का मार्ग ढूंढकर हृदय में वापिस लौटा आता है अथवा धमनियां फट जानी चाहियें और शिरायें खाली हो जानी चाहियें, जो कभी भी नहीं होता है। और तब उसने द्विगति (Double motion) और रक्त भ्रमण (Blood Circulation) का सिद्धान्त सबके सम्मुख रखा। जो यहाँ चित्र द्वारा समझाया गया है।
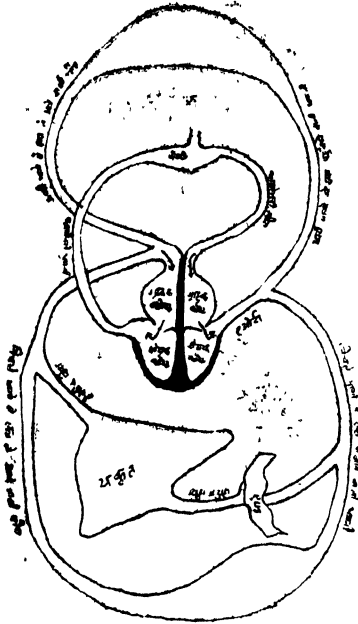
मैलपीजि (Malpighi) ने अपने सूक्ष्म दर्शक यन्त्र द्वारा इसकी पुष्टि करदी। तभी गृह-युद्ध छिड़ गया। यह चार्ल्स प्रथम के परम मित्र थे। उसे इसी सन्देह के कारण काफी कष्ट भोगना पड़ा। उसके अध्ययन के सारे नोट्स जला दिये गये। इनको पढ़ने का बहुत शोक था। राजा चार्ल्स प्रथम जब इनको एजहिल की लड़ाई में अपने साथ ले गये तो गोले और बन्दूकों के बीच पेड़ के नीचे पुस्तक लेकर बैठ गये।

अपने जीवन के अन्तिम वर्ष इन्होंने बिल्कुल एकान्तवास में बिताये और १६५७ ई० में इनकी मृत्यु हो गई।

डा० आइन्स्टीन और सापेक्षवाद
(Dr. Einstein and theory of Relativity)

जितना आइन्स्टीन महान है उतना ही उनका व्यक्तित्व रहस्यमय है। जन साधारण उनके सिद्धान्तों, कार्यों के बारे में उतनी जानकारी नहीं रखता जितनी एक वैज्ञानिक के बारे में रखना चाहियें। विश्वविद्यालय के एक स्नातक को भी उनके सापेक्षवाद के सिद्धान्त को एक साधारण आदमी को समझाने में कठिनाई उत्पन्न हो जाती है और सचमुच सापेक्षवाद को पूर्ण रूप से समझने वाले इस जग में हैं ही कितने। साधारणतय: लोग इस महामना का सम्बन्ध केवल परमाणु शस्त्रों से जोड़ते हैं। परन्तु बात दूसरी ही है, परमाणु शस्त्रों का निर्माण तो किया था ओपेन हाइमर ने। आइन्स्टीन ने केवल द्वितीय महायुद्ध के समय रुजवेल्ट को लिखा था कि परमाणु का उपयोग युद्ध में भी किया जा सकता है। वह तो प्रसिद्ध हैं अपने सापेक्षवाद, ब्रह्माण्डीय नियमों (Cosmic Laws), संगठित क्षेत्र-सिद्धान्त (Unified Field Theory) आदि के द्वारा। न्यूयार्क के रिवरसाइड गिर्जाघर की सफेद दीवारों में १४ महान वैज्ञानिकों की आकृतियाँ खुदी हैं और इनको न्यूटन के बाद का महानतम वैज्ञानिक कहा जाता है।

आधुनिक काल के इस महानतम वैज्ञानिक अल्बर्ट आइन्स्टीन का जन्म १४ मार्च सन १८७९ ई० में जर्मनी के उल्म नामक स्थान में हुआ। दुर्भाग्य से यह यहूदी परिवार में उत्पन्न हुये जो बेचारे सदा से ही लोगों की कोप-दृष्टि के शिकार बने हुए हैं। अपनी आयु के बालकों से मानसिक शक्ति में बहुत ही आगे थे। कहते हैं कि एक बार इनके अध्यापक ने बुरी तरह झिड़क दिया था क्योंकि यह अवकाश के समय न जाने कौन सी ऊलजलूल बातें लिखा करता था और टेढ़े मेढ़े चित्र बनाया करता था। और मजे की बात यह है कि ठीक इस घटना के एक वर्ष के बाद १६ वर्ष की आयु में इन्होंने एक छोटा सा निबन्ध जर्मन के वैज्ञानिक समूह के सामने पढ़ा जिसकी मुक्त कंठ से प्रशंसा की गई। वैसे यह प्रतिभाशाली तो बहुत पहले बचपन से ही थे। पाँच वर्ष की आयु में से ही वह भौतिक विज्ञान में रुचि लेने लग गये थे और कम्पास की सुई के बारे में इन्होंने अपने अनुमान व्यक्त कर दिये थे। १७ वर्ष की आयु में यह ज्यूरिख स्थिति (Swiss Federal Polytechnic School) में अध्ययन करने चले गये थे। इसके चार वर्ष बाद यह स्विट्जरलैण्ड के नागरिक बन गये। लगभग ७ वर्षों तक सन १९०२ ई० से लेकर १९०९ ई० तक यह स्विस पेटेन्ट आफिस में सहायक के रूप में कार्य करते रहे। इसी साल उन्होंने विवाह कर लिया था और इनकी दो सन्तानें भी हो गई थीं।

सन १६०५ ई० एकाएक २६ वर्ष की अल्प आयु में ही इन्होंने सापेक्षवाद का सिद्धान्त निकाल कर अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति अर्जित कर ली।

इस ख्याति ने इन्हें ज्यूरिख-विश्वविद्यालय के प्राध्यापक के रूप में खींच लिया। बाद में यह प्रेग-विश्वविद्यालय में चले आये। सन १६१३ ई० में "रायल प्रशियन अकादमी आफ साइन्स" ने इन्हें अपना मनोनीत सदस्य चुन लिया और यह बर्लिन विश्वविद्यालय के प्राध्यापक नियुक्त कर लिये गये। यहाँ यह अपने अनुसन्धान के कार्य में लीन रहे। राजनीति से यह बिल्कुल ही दूर थे। और जब ६२ जर्मन के विशिष्ट व्यक्तियों ने अपना प्रसिद्ध एतिहासिक घोषणा पत्र प्रकाशित किया तो उसमें उन्होंने हस्ताक्षर करने से इन्कार कर दिया।

सन १६२१ से १६२३ तक यह पूरे विश्व का भ्रमण करते रहे और भाषण देते रहे। इसी काल में उनको नोबेल पुरस्कार मिला। रायल सोसाइटी ने इन्हें काप्ले पदक से सम्मानित किया और आक्सफोर्ड-विश्वविद्यालय ने इन्हें "डाक्टर आफ साइन्स" की उपाधि दी।

सन १६२३ में जब जर्मन नाजियों ने यहूदियों पर अत्याचार करने प्रारम्भ किये तो उन दिनों यह अमरीका में ही थे। वह फिर वहीं रह गये। जर्मनी लौटना उन्होंने स्वीकार न किया और "प्रशियन अकादमी" को इन्होंने त्यागपत्र भेज दिया। और यह न्यूजर्सी के प्रिन्सटन स्थित (Institute for Advanced Study) में गणित के प्राध्यापक बना दिये गये। वह स्थायी रूप से अमेरिका के निवासी हो गये। अपने जीवन के अन्तिम वर्षों में वह संगठित क्षेत्र सिद्धान्त (Unified Field Theory) को विकसित करने में लगे रहे और १८ अप्रेल १६५५ को इनका देहान्त हो गया।

आइन्स्टीन के विचारानुसार संसार में प्रत्येक वस्तु एक दूसरे से सम्बन्धित है। कोई वस्तु, पदार्थ, ज्ञान निरपेक्ष नहीं है। न समय निरपेक्ष है न गति। उनका आधार भूत सिद्धान्त था कि सभी गतिशील प्रणालियों के लिये प्रकृति के नियम एक समान हैं। प्रकृति के सभी तत्व, उसके सभी नियम, उन सभी प्रणालियों के लिये एक समान हैं, जो एक दूसरे से मिले हुए एक साथ गतिमान हैं। आइन्स्टीन ने बतलाया कि इस ब्रह्माण्ड के सभी नक्षत्र, सूर्य, तारों की गतिविधियाँ एक दूसरे से परस्पर सम्बन्धित हैं क्योंकि दिक् (Space) की न तो कोई सीमा है और न दिशा।

इसको सरल रूप से यों समझा जा सकता है कि कोई वस्तु हमारे लिये अच्छी

इसलिये है कि उसी रूप को हमने बुरी वस्तु देख रखी है। यदि बुरी वस्तु न रहती तो हम उसे अच्छी किस तरह कहते। दिन का अस्तित्व, इसी प्रकार अंधेरे के कारण है। उसी प्रकार 'अभी', 'यहाँ', 'यह', 'अब' का कोई महत्व नहीं रह जाता क्योंकि यह तो मनुष्य ने अपनी सुविधा के लिये बना रखे हैं। सापेक्षवाद के सम्बन्ध में एक चुटकला प्रसिद्ध है। एक वृद्धा के पुत्र का विवाह हुआ था। जब उसकी पड़ौसिन उसे बधाई देने आई तो पूछ बैठी "तुम क्यों नहीं अपने पुत्र और पुत्रवधु के साथ चली जातीं, वृद्धा ने उत्तर दिया, नहीं मैं सास बन कर नहीं जाऊँगी, मैं दादी बनने के पश्चात जाऊँगी, मेरा सम्मान तब अधिक होगा।

इसके अतिरिक्त आइन्स्टीन ने सिद्ध किया कि प्रकाश भी एक पदार्थ है और उसमें (Photon) कण होते हैं। विद्युत और चुम्बकत्व के बारे में भी उनकी धारणा थी कि वे एक ही शक्ति के दो रूप हैं। न्यूटन के आकर्षण सम्बन्धी सिद्धान्त को भी इन्होंने नहीं माना है और आकर्षण शक्ति का अपना अलग अलग मत निकाला है। वह कहते हैं कि आकर्षण कोई शक्ति नहीं है।

हमारे भारतीय वैज्ञानिक

आज के जीवन में विज्ञान का महत्व अब सब लोग पहचानने लग गये हैं। विज्ञान के सामाजिक महत्व पर बोलते हैं। श्री जवाहरलाल नेहरू ने एक बार कहा था कि यह केवल विज्ञान द्वारा ही सम्भव है कि भूख और गरीबी, बीमारी और निरक्षरता दूर की जा सकती है। आज हमारा देश जब कि उन्नति की ओर धीरे धीरे कदम बढ़ा रहा है इसलिये सरकार द्वारा विज्ञान को अधिक से अधिक महत्व दिया जा रहा है।

भाग्य से भारत में विज्ञान की एक लम्बी परम्परा रही है। भूतकाल में दवाइयों, चीर फाड़, ज्योतिष और गणित में बड़े बड़े आचार्य हुए हैं। रसायन का भी बिकास हुआ है। वनस्पति विज्ञान, खेती बाड़ी और जड़ी बूटियों के बारे में भारतीय बहुत पहले से जानते थे। परन्तु मध्यकालीन युग से जब भारत गुलाम हो गया तो वैज्ञानिक उन्नति को ग्रहण लग गया और धीरे धीरे भारत प्रत्येक वैज्ञानिक उपलब्धि के लिये पश्चिम का मुँह ताकने लग गया।

अंग्रेजी सरकार ने भी भारत में विज्ञान के प्रति प्रथम विश्वयुद्ध तक कोई खास ध्यान नहीं दिया। उस वातावरण के बीच भी कुछ भारतीय वैज्ञानिक अपने पैरों पर खड़े हुये और उन्होंने घर-बाहर नाम कमाया। सर सी० वी० रमन ने तो नोबेल पुरस्कार जीता। गणित में रामानुजम ने पश्चिम में बड़ी ख्याति अर्जित की। रसायन में पी० सी० रे० ने नाम कमाया। वनस्पति विज्ञान में जगदीशचन्द्र बोस और डा० बीरबल साहनी ने महत्वपूर्ण खोजें कीं। यू० एन० ब्रह्मचारी और आर० एन० चोपड़ा ने चिकित्सा विज्ञान में महत्वपूर्ण कार्य किये। इन आगे के पृष्ठों में इन्हीं महान वैज्ञानिकों की सेवाओं को संक्षिप्त रूप से प्रस्तुत किया गया है।

डी० एन० वाडिया

हमारे भारतीय वैज्ञानिक श्री डी० एन० वाडिया सर्वप्रथम भारतीय व्यक्ति हैं जिन्हें एफ़० आर० एस० (F.R.S.) होने का सम्मान प्राप्त हुआ है। 'ज़्योलॉजी आफ इन्डिया' (Geology of India) नामक अन्तर्राष्ट्रीय प्रसिद्ध प्राप्त महान ग्रन्थ का रचयिता यह महान वैज्ञानिक आज भी ७७ वर्ष की आयु में अपने अथक परिश्रम, अटूट उत्साह और समस्त जीवन के कारण विख्यात है।

डी० एन० वाडिया का सम्पूर्ण जीवन भारत की वैज्ञानिक प्रगति की एक संघर्षमयी कहानी प्रस्तुत करता है। सन् 1883 ई० में यह सूरत में जन्मे थे। प्रारम्भिक शिक्षा के पश्चात यह बड़ौदा कालेज, और बम्बई विश्वविद्यालय में पढ़ते रहे। एम० ए० करने के पश्चात ही इन्होंने शोध का कार्य प्रारम्भ कर दिया तथा दिल्ली विश्वविद्यालय से इन्हें डी० एस० सी० (D.S.C.) की सम्मानित उपाधि भी मिल गई। उन्हीं दिनों यह जम्मू के प्रिन्स आफ वेल्स कालेज में भू-गर्भ शास्त्र पढ़ाया करते थे। उन दिनों इस विषय पर कोई भी पाडित्यपूर्ण ग्रन्थ उपलब्ध नहीं थे। अध्ययन की सामग्री इतनी बिखरी बिखरी मिला करती थी कि छात्रों के लिये यह सम्भव नहीं था कि वह अपना अमूल्य समय केवल विषय को ढूंढने में ही नष्ट करदें। इन सब बातों को ध्यान में रखते हुये इन्होंने अनवरत परिश्रम द्वारा अपना प्रसिद्ध ग्रन्थ (Geology of India) लिखा। इस ग्रन्थ ने इन्हें देश-विदेश में खूब प्रसिद्ध कर दिया। आज तक भी इस पुस्तक का महत्व अक्षुण्ण है।

भारतीय सरकार ने इनकी सेवाओं से प्रभावित होकर इन्हें भारतीय भौगर्भिक सर्वेक्षण विभाग (Geological Survey of India) का कार्य सौंप दिया। इन्होंने भारत के कई जिलों का सर्वेक्षण किया और अपनी कार्य दक्षता के कारण शीघ्र ही उन्नति के शिखर पर पहुंच गये। यहाँ से यह लंका सरकार के पास खनिज विभाग के अध्यक्ष बनकर चले गये और वहाँ ६ वर्ष तक कार्य करने के पश्चात भारत सरकार के खनिज सलाहकार बनके आगये।

Indian Science Congress तथा National Institute of Sciences of India के आप प्रेसिडेन्ट रह चुके हैं।

प्रफुल्ल चन्द रे

P. C. Ray

धोती, कुर्ता पहने हुये सरल, गम्भीर और आडम्बरहीन व्यक्ति को भारत का महान वैज्ञानिक होने को सौभाग्य मिलचुका है और यह व्यक्ति है प्रफुल्ल चन्द्र रे। सचमुच कभी कभी आश्चर्य होता है कि कितना अडिग, अदम्य उत्साह था इस दुबले पतले वरदानी में। न खाने का होश था न पीने का। दाढ़ी बढ़ी रहती थी बाल बिखरे रहते थे और कपड़े अस्त व्यस्त। इस बिखरे बिखरे जीवन को देख कर एक बार इनके एक मित्र ने आग्रह किया था कि आप विवाह क्यों नहीं कर लेते। हँस कर प्रफुल्ल चन्द बोले कर तो लिया है, यह रसायन मेरी चिर संगिनी बन चुकी है भला इसे छोड़ कर मैं और किसे वरूँ। सन् १६२२ में एक बहुत बड़ी बाढ़ आई थी। हजारों घर ढह गये थे। कई बह गये थे। प्रफुल्ल चन्द रे उन दिनों अपने साथियों के साथ साथ स्थान स्थान पर घूमकर लोगों में दवा-दारू बाँट रहे थे। इनके द्वारा की गई सेवा देख कर एक अंग्रेज़ ने कहा था कि महात्मा गान्धी अगर दो और प्रफुल्ल चन्द रे बना दें तो भारतवर्ष एक वर्ष के अन्दर ही स्वतन्त्र हो जायेगा।

इस सरल सन्त वैज्ञानिक का जन्म १८६१ ई० में बंगाल के खुलना जिले के काटियारा नामक गाँव में हुआ था। छात्र जीवन में यह कुछ बीमार से रहा करते थे और एक बार दो वर्ष तक इनका अध्ययन बिल्कुल ही छूट गया। १८२२ में अपने अथक परिश्रम से गिलक्राईस्ट छात्रवृत्ति प्राप्त करके यह एडिनबरा चले गये। वहीं पर विज्ञान के प्रति इनकी रुचि बढ़ी। स्वदेश लौटने पर यह कलकत्ते के प्रेसीडेन्सी कालेज में रसायन शास्त्र के प्राध्यापक नियुक्त हो गये। इनका सारा समय अध्ययन, शोध और अध्यापन में बीत जाता था। लगभग पन्द्रह वर्ष पश्चात भारतीय रसायन विद्या का जगत को परिचय कराने के लिये इन्होंने हिन्दू रसायन शास्त्र (Hindu Chemistry) नामक एक पुस्तक प्रकाशित करवाई। इस पुस्तक ने भारत और विदेश में इनके लिये काफी ख्याति अर्जित की। चारों तरफ भूरि भूरि प्रशंसा मिली। विदेशों को पहली बार ज्ञात हुआ कि भारत के प्राचीन काल में विज्ञान अपने सुव्यवस्थित ढंग से काफी विकसित हो चुका था।

सन् १८६५ ई० में प्रफुल्ल चन्द रे ने पारे (Mercury) का एक नया लवण रकमयूरस नाइट्राइट (Mercurous Nitrite) खोज निकाला। इस अनुसन्धान

ने इनकी प्रतिभा को और भी चमका दिया। फिर इन्होंने एमान नाइट्राइट (Amine Nitrite) अमोनियम राइट्राइट (Ammonium Nitrite) की खोज कर डाली। नाइट्रिक एसिड के रासायनिक गुणों पर आपने विस्तृत शोध की और उसके प्रभावों और गुणों का पता लगाया।

प्रफुल्ल चन्द रे ने हजारों शोधपत्र छपवाये हैं। इनकी सबसे बड़ी देन "बँगाल कैमिकल एन्ड फार्मेस्यूटिकल वर्क्स" (Bengal Chemical and Pharmaceutical Works) है। कलकत्ता के अपर सरकुलर रोड पर रु० ८००) की अल्प पूँजी से स्थापित की हुई कम्पनी आज कई लाखों की लिमिटेड संस्था बन गई है।

कहते हैं कि इतने बड़े और महान वैज्ञानिक के पास व्यक्तिगत पूँजी के नाम पर कुछ पुस्तकें, एक बिस्तर, एक पुरानी मेज कुछ कुर्सियाँ ही थीं। अपनी आय का अधिकांश भाग यह गरीब विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति देने में खर्च कर देते थे।

प्रफुल्ल चन्द रे का नाम सदा अमर रहेगा।

सर जगदीश चन्द्र बोस (१८५८-१९३६)
(Sir Jagdish Chandra Bose)

अपने अनुसन्धानों के कारण सर जगदीश चन्द्र बोस पश्चिम में और विदेश में पूरब के जादूगर के नाम से विख्यात हैं क्योंकि इन्होंने अपने सिद्धान्तों को प्रतिवादित करने के लिये स्वयं निर्मित सूक्ष्म ग्राही यन्त्रों का उपयोग किया था। सर जगदीश चन्द्र बोस ऐसे वैज्ञानिक थे जिस पर भारत को सदा गर्व रहेगा। काश वह कुछ पहले उत्पन्न न हुये होते तो अच्छा रहता क्योंकि आज स्वतन्त्र भारत में उन की प्रतिभा का जितना मूल्यांकन हो सकता था वह उस समय न हो सका जबकि भारत अंग्रेज़ों द्वारा शाषित था। सर्व प्रथम बिना तार के खबरें पहुँचने का जो कार्य उन्होने भौतिक रूप से कर दिखाया था उसका श्रेय उन्हें प्राप्त न हो सका। यह १८९५ की बात है जब हजारों की भीड़ के सम्मुख उन्होंने अपने एक यन्त्र (आजकल के वायरलेस ट्रान्समीटर के समान) का प्रदर्शन कलकत्ता के टाऊन हाल में किया था। उन्होंने विद्युत तरंगे उत्पन्न की और दूसरे कमरे में एक घन्टी बज उठी। इन्हीं निष्कर्षों पर अमरीका के निकोला टेसला, इन्गलैन्ड के सर ऑलिवर जार्ज और इटली के मारकोनी भी पहुंचे थे और सफलता का सेहरा मारकोनी के सिर बँधा था १९०१ में। अब हम इतना कह कर सन्न का सकते हैं कि भारत ने भी रेडियो के आविष्कार में सहयोग दिया था।

सर जगदीश चन्द्र बोस के लिये कहा जाता है कि वह चाँदी का चम्मच मुंह में लेकर उत्पन्न हुये थे। उन के माता पिता सम्भ्रान्त और धनी होने के साथ साथ सम्यक विचारों वाले और बड़े आदर्शवादी व्यक्ति थे। जगदीश चन्द्र का जन्म ३० नवम्बर १८५८ ई० को हुआ था। इनके पिता एक उच्च सरकारी पद पर थे। उन्होंने अपने बेटे को एक उच्च अंग्रेजी स्कूल में न भेज कर एक ग्रामीण पाठशाला में शिक्षा दिलवायी जहाँ पर जगदीश चन्द्र बोस को बँगाली के माध्यम से अपने देश और सस्कृति का अच्छा परिचय मिला जिसने आगे चल कर स्वदेशाभिमान का इतना बड़ा रूप ले लिया कि जब इन की ख्याति को सुन कर जर्मन के कुछ वैज्ञानिकों ने इन्हें अपने देश में आ कर शोध करने का आमन्त्रण देते हुये एक पूरा विश्वविद्यालय इनके नाम कर देने का प्रलोमन दिया तो इन्होंने साफ इन्कार कर दिया और कहा कि मैं उसी स्थान पर और उसी भूमि पर रहना पसन्द करूँगा जहाँ पर मैं ने इतनी ख्याति अर्जित की है। तो प्रारम्भिक शिक्षा पूर्ण करने के पश्चात जगदीश चन्द्र बोस ने आई. सी. एस. अफ्सर बनने के लिये इंगलैंड जाने का निश्चय किया परन्तु इनके पिता की यह दृढ़ इच्छा थी कि जगदीश चन्द्र दूसरों पर शासन करने के बजाय स्वंय को शाषित रखें। उन्होंने कहा कि जीवन का उद्देश्य धन या शक्ति को एकत्रित करना नहीं अपितु पर सेवा

है। इन बातों का जगदीश चन्द्र पर अच्छा प्रभाव पड़ा और इन्होंने डाक्टर या वैज्ञानिक बनने का निश्चय कर लिया और इंगलैण्ड चले गये। वहाँ उन्होंने कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के क्राइस्ट कालेज में नाम लिखा लिया। वहाँ से विज्ञान के स्नातक होने के पश्चात यह वापिस लौट आये और कलकत्ता के प्रेसीडेन्सी कॉलेज में अध्यापक नियुक्त हो गये।

अध्ययन करते हुये इन्होंने शोधकार्य प्रारम्भ किया और अपनी प्रयोगशाला को नये नये यन्त्रों से सुसज्जित करने में लग गये। कई वर्षों के कड़े परिश्रम के बाद उनकी प्रयोगशाला संसार की सर्व श्रेष्ठ प्रयोगशालाओं में से एक बन गई। इन्होंने पहले विद्युत तरंगों के बारे में शोध की। अपने कई शोध-पत्र विज्ञान की पत्रिकाओं में छपवाये और दूसरे वैज्ञानिकों के पास भेजे जिन की बहुत प्रशंसा हुई। इन का पहला शोध पत्र (Polarisation of an Electric Ray by a crystal) प्रकाशित हुआ था। इसके बाद के कई शोधपत्र प्रकाशित हुये। रायल सोसाईटी ने इन्हें डाकटर ऑफ साइन्स की उपाधि से सम्मानित किया। इन्होंने कुछ ऐसे सूक्ष्मग्राही यन्त्रों का निर्माण किया जिससे १० लाख गुना अभिवर्धन हो सकता था। अपने यन्त्रों को ले कर इन्होंने यूरोप का भ्रमण किया और वहाँ के वैज्ञानिकों पर एक स्थायी प्रभाव छोड़ा। वहाँ की रायल सोसाइटी और लीनियन सोसाईटी ने इन्हें कई बार भाषण देने के लिये बुलवा कर सम्मानित किया

जगदीश चन्द्र बोस ने भौतिक विज्ञान के साथ साथ वनस्पति विज्ञान में भी अत्यधिक रुचि ली और सच पूछा जाय तो पौधों के बारे में उन्होंने संसार को ऐसे नये तथ्यों की जानकारी करायी जिससे सारी दुनियां दंग रह गयी। उसने ऐसे यन्त्रों का निर्माण किया जिसके द्वारा पौधों की अनुभूतियों, इनकी गतियों और उनकी उन्नति को देखा परखा जा सकता था। सर्वप्रथम उन्होंने ही बतलाया था कि पौधों में भी सुख दुख की अनुभूति होती है। वे भी मनुष्य तथा अन्य जीवों की भाँति खुश होते हैं, कारण होते हैं और पीड़ा महसूस करते हैं। इनके बनाये हुये यन्त्रों में Resonat recorder, Oscilating Recorder प्रसिद्ध हैं। सब से अधिक सफलता इनको एक यन्त्र क्रैस्कोग्राक (Crascograph) बनाने में हुई जिसके द्वारा पौधों की उन्नति को जो एक क्षण में एक इन्च का १/१०००००० भाग होता है, बिल्कुल सही नापा जा सकता था। जगदीश चन्द्र बोस ने पता लगाया कि पौधों में लवणयुक्त जल (Sap) तनों में सीधा नहीं चढ़ता अपितु सीढ़ी के अनुसार रुक रुक कर एक धड़कन की तरह ऊपर चहुता है मानो पेड़ में भी हृदय होता हो।

सर जगदीश चन्द्र बोस, सच्चे अर्थों में वैज्ञानिक थे। १९१५ ई० में इन्हों ने बोस रिसर्च इन्स्टीट्यूट (Bose Research Institute) की स्थापना की जो आज भी उसी दिशा में महत्वपूर्ण कार्य कर रहा है।

श्रीनिवास रामानुजम

(Shriniwas Ramanujam)

श्रीनिवास रामानुजम का जीवन-वृत एक ऐसे महान गणितज्ञ का परिचय हमें कराता है जो वास्तव में गुदड़ी से लाल थे। न जाने इस प्रकार की कितनी ही प्रतिभायें अनुकूल वातावरण न मिलने से अकाल ही काल के गाल में समा जाती है। श्रीनिवास रामानुजम तो बेचारे बहुत ही छोटी आयु में क्षयरोग से ग्रस्त होकर चल बसे। क्षयरोग का सबसे बड़ा कारण बिना श्रेष्ठ भोजन के अथक परिश्रम था। वह इतने गरीब कुटुम्ब में उत्पन्न हुये थे कि अच्छा खाना पीना तो दूर, पेट भरने के लिये इन्हें रु० ३०) मासिक की क्लर्की करनी पड़ी थी। काश, वह भारत में पैदा न होकर यूरोप में उत्पन्न हुये होते जहाँ के लोगों ने इनकी प्रतिभा देखकर अपना संरक्षण दे दिया होता और यह शान्ति पूर्वक अपना कार्य करते रहते ।

श्रीनिवास रामानुजम का जन्म २२ दिसम्बर १८८७ ई० में मद्रास के कुम्भकोनम नामक गाँव में हुआ। इनके पिता बहुत गरीब थे और मुनीमी का कार्य किया करते थे। कहा जाता है कि बहुत छोटी आयु में ही यह गणित की कठिनतम- दुःसहाय पहेलियों का अर्थ निकाल लिया करते थे। अपनी प्राइमरी कक्षाओं को पास करते करते यह कालेज के स्तर तक का गणित हल कर चुके थे। १९०३ ई० में मैट्रिक परीक्षा पास करने के बाद इन्होंने सरकारी छात्रवृति प्राप्त कर ली और आगे बढ़ने लगे प्ररन्तु भाग्य की विडम्बना देखिये कि एफ० ए० में यह फेल हो गये। कारण यह था कि अपने गणित-प्रेम के कारण इन्होंने अपना सारा समय उसी में बिता दिया तथा अन्य किसी विषय को छुआ तक नहीं। एक बार तो इन्होंने और प्रयत्न किया परन्तु सफल न हो सके। आर्थिक स्थिति इनकी ठीक नहीं थी। दो चार स्थानों पर भटकने के बाद मद्रास पोर्ट ट्रस्ट में इन्हें ३०) की नौकरी मिल गई। नौकरी के अवकाश का समय इन्होंने गणित में लगा दिया। दिन रात, खाते पीते यह प्रश्नों के हल करने में लगे रहते थे। नामक्कल की देवी नामागिरी के लिये इनके मन में विशेष श्रद्धा थी। इनका विश्वास था कि गणित का ज्ञान इसी देवी के द्वारा इन्हें ज्ञात होता है। रात्रि को सोते सोते यह उठ कर बैठ जाया करते थे और अर्ध-निद्रित अवस्था में ही गणित-परिणाम लिख लेते थे और अगले दिन वह उसके प्रमाणों को खोजते रहते थे।

पहला लेख इन्होंने १९११ में प्रकाशित करवाया उसके बाद अगले वर्ष इनका प्रबन्ध और फिर मैथिमैटिकल सोसायटी के मखपत्र में प्रकाशित हुआ। इन लेखों

में अपूर्व सूझ बूझ और विद्वता थी। आसपास इनकी चर्चा फैली। लोग इस नयी उगती हुई प्रतिभा का स्वागत करने लगे। और मद्रास विश्वविद्यालय ने इन्हें ७५) मासिक की छात्रवृति प्रदान की। १९१३ में इन्होंने इंगलैण्ड के प्रसिद्ध गणितिज्ञ प्रो० हार्डी के पास अपने कुछ लेख अवलोकनार्थ प्रेषित किये जिनको पढ़ कर वह अचम्भित हो गये और झट उन्होंने रामानुजम को इंगलैण्ड बुलवाने का प्रबन्ध कर दिया ताकि वह अनुकूल वातावरण में रह कर ठोस कार्य कर सकें। मद्रास विश्वविद्यालय ने भी इनके खर्चे के लिये २५० पौंड की वार्षिक छात्रवृति दे दी। इंगलैण्ड में प्रो० लिटिल और हार्डी की सहायता से कार्य प्रारम्भ कर दिया। इनके कई महत्वपूर्ण लेख वहाँ की प्रसिद्ध पत्रिकाओं में प्रकाशित हुये १९१८ में यह रायल सोसाइटी के सदस्य चुन लिये गये जो एक बहुत बड़ा सम्मान था। इन्हीं दिनों इन्हें क्षय रोग ने ग्रस्त कर दिया और यह बीमारी की अवस्था में स्वदेश लौट आये। यहाँ पर आकर इनकी हालत और बिगड़ गई और १९२० ई० में २६ अप्रैल को इनका देहान्त हो गया। कहते हैं कि मृत्यु शैया पर भी अनुसन्धान कार्य में इनका मस्तिष्क काम करता रहा। प्रो० हार्डी ने मृत्यु विज्ञप्ति प्रकाशित की थी और उसका अन्तिम वाक्य यह था—"इस समय से २० वर्ष पश्चात जब कि रामानुजम के कृत्य से उत्पन्न हुये सब गवेषण कार्य पूरे हो जायेंगे, तब सम्भवतः यह आज की अपेक्षा कहीं अधिक आश्चर्यमय प्रतीत होगा।"

इनका कार्य कैम्ब्रिज और मद्रास विश्वविद्यालय ने प्रकाशित कर दिया है। रामानुजम ने (थ्योरी आफ नम्बर्स, Theory of Numbers, हाईली कम्पोसिट नम्बर्स, Highly Composite Numbers,) आदि पर महत्वपूर्ण खोजें की हैं। इसके अतिरिक्त Theory of Partitions, Ellipic Functions, Theory of Equations, Infinite Series, Definite Series आदि इनकी प्रसिद्ध गवेषणायें हैं।
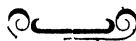
बीरबल साहनी (१८६१-१६४६)

(Birbal Sahni)

भारतवर्ष में वनस्पति विज्ञान में महत्वपूर्ण स्थान बनाने वालों में बीरबल साहनी अग्रणी हैं। डा० शिव राम कश्यप ने वनस्पति शास्त्र की जो परम्परा स्थापित की थी उसको काफी दूर तक ले जाने का श्रेय बीरबल साहनी को है। आज बीरबल साहनी के शिष्य भारत के कोने कोने में इस विज्ञान की नई शाखा में महत्पूर्ण योग दे रहे हैं।

बीरबल साहनी का जन्म पंजाब के शाहपुरा जिले में भेड़ा नामक गाँव में हुआ था। भाग्य से बीरबल को सुयोग्य माता पिता का संरक्षण मिला। पिता स्वयं रसायन विज्ञान के प्रसिद्धि प्राप्त वैज्ञानिक थे। इसलिये विज्ञान की परम्परा बीरबल को घर पर ही मिली। बीरबल प्रारम्भिक शिक्षा लाहोर में समाप्त करने के बाद उच्च शिक्षा के लिये कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में चले गये। वहाँ प्रसिद्ध वनस्पति शास्त्री सीवार्ड (Seward) की छाया में इन्होंने विज्ञान के मूलमन्त्र सीखे। वहीं से इन्हें डाक्टर ऑफ साइन्स की भी उपाधि मिली। भूगर्भीय पौधों की शोध में ही इन्हें यह उपाधि मिली थी इसीलिये जब यह १६१६ में स्वदेश लौटे तो यहाँ आकर बनारस, पंजाब और लखनऊ में उसी कार्य को बढ़ाते रहे और इस काल में इन्होंने लगभग १५० शोध पत्र प्रस्तुत किये। इनके कार्यों से प्रभावित हो कर १६३६ ई० में इन्हें रॉयल सोसाइटी का सदस्य बना लिया गया।

भूगर्भीय पौधों का अध्ययन करके इन्होंने सिद्ध किया कि नागपुर और छिंदवाड़े की चट्टानें सुदूर अतीत से सम्बन्ध रखती हैं। जब मनुष्य ने पहली सांस ली ही नहीं थी। इसी प्रकार हिमालय के पौधों का निरीक्षण करके इन्होंने निष्कर्ष निकाला कि किसी समय हिमालय के दर्रों और घाटियों की ऊँचाई उतनी नहीं रही होगी जितनी कि आज है और इसके दोनों पार्श्वों में लोग एक दूसरे से अच्छा सम्पर्क रखते थे। हिमालय के जन्म के बारे में, गोंडवाना और अंगारा महाद्वीपों के विकास के बारे में आपने महत्वपूर्ण गवेषणायें की हैं। इन्होंने यह भी बतलाया कि चीन और साइबेरिया के वनस्पतियों में लक्षित रूप से कई समानताएं पायी जाती हैं।

इसके अतिरिक्त बिहाल के राजमहल स्थान के भूगर्भीय पौधों के बारे में आपने विशेष अनुसन्धान किये और पौधों के विकास क्रम की खोई हुई अनेक कड़ियाँ जुटाईं।

लखनऊ का Sahni Paleobotanical Institute इन्हीं की देन है।

सी० वी० रमन
(C. V. Raman)

सी० वी० रमन भारत के अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त ऐसे महान वैज्ञानिक है जिन्हें ऐशिया में सर्व प्रथम नोवेल पुरस्कार मिला। यह पुरस्कार इनको प्रकाश विज्ञान की नई खोज "रमन किरण" के ऊपर मिला था। इनकी अनुसन्धान प्रवृति की पराकाष्ठा देखिये कि पुरस्कार की कुल धनराशि को अपने व्यक्तिगत आवश्यक्ताओं में खर्च न करके ३०० हीरे खरीद लिये ताकि अपना अनुसन्धान और आगे बढ़ा सकें।

चन्द्रशेखर बेंकेट रमन अद्वितीय और असाधारण मेधावी व्यक्ति हैं। अधिकतर वैज्ञानिक विज्ञान की एक शाखा में ही कार्य करते हैं। परन्तु इन्होंने विज्ञान को सम्पूर्ण रूप से तो लिया ही, उसके अतिरिक्त यह जानकर महान आश्चर्य होता है कि आप एक उच्च सरकारी पद पर रह कर वह व्यावहारिक कार्य कर चुके हैं जो आदमी को बिल्कुल मशीन और दूसरे कार्यों के अयोग्य बना देता है। भला बताइये, कि डाक तार विभाग में रहकर जब व्यक्ति दिन रात अर्थ व्यवस्था के नीरस कार्य मुद्रा, बीमा, ऋण, बजट आदि को निबटता रहे तो विज्ञान के लिये उसके पास कहाँ शक्ति बचती होगी। परन्तु यह सी० वी० रमन ही थे कि पहले डिप्टी एकाऊन्टेन्ट जनरल और फिर तार विभाग के जनरल रह कर भी विज्ञान के लिये अनवरत खोजें कर सके।

सी० वी० रमन की उत्कंठित महत्वकाँक्षा बिज्ञान की ओर बहुत प्रारम्भ से ही थी। अभी यह कालेज के स्नातक भी घोषित नहीं हुए थे कि वे इससे पूर्व स्पैक्ट्रोमीटर पर इनके दो शोध लेख वैज्ञानि क पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके थे और इनको लोग जानने लग गये थे।

आप २५ वर्ष की आयु में सरकारी पद का प्रलोभन छोड़ कर कलकत्ता विश्वविद्यालय में भौतिक शास्त्र के आचार्य बन गये और फिर वहाँ साधनों में जुट गये। इसी बीच आपने रमन प्रभाव, प्रकाश का वेग, (Molecular defraction of light) आदि पर अनुसंधान किये। भौतिक विज्ञान की और भी किननी ही शाखाओं में इन्होंने शोध कार्य किया है। जिनमें मुख्य हैं, संघात व स्थिति स्थापकता, समाधान, आकृतियों के सम्बन्ध में विरीक्षण, पृष्ठ वितति उर्मि और पृष्ठ गति व तरंगें तापवाहन, तरल सान्द्रता की सन्दीप्ति, वर्णपट विज्ञान, और रेडियम-धर्म, परिवेष या प्रभामन्डल आदि। आज कल आप बंगलौर के इन्डियन इन्स्टीट्यूट ऑफ साइन्स में यह प्रकाश की तरंग गति, कणिका सिद्धान्त और प्रकाश कोणीय आवेग के ऊपर अनुसन्धान कार्य कर रहे हैं।

डा० मेघनाथ साह

डा० मेघनाथ साह अपनी गवेषणाओं और शोधकार्यों के कारण देश-विदेश में काफी ख्याति अर्जित कर चुके हैं। बहुत साधारण से परिवार में जन्म लेकर अपने अध्यवसाय के कारण आज यह भारत के सर्वश्रेष्ठ वैज्ञानिकों की पंक्ति में आ बैठे हैं। 1927 ई० में इन्हें F.R.S. की सम्मानित उपाधि से विभूषित किया गया था। सर सी० वी० रमन के समान शायद यह भी नोबेल पुरस्कार पा सकते हैं।

ढाका जिले में सन् 1893 में इनका जन्म हुआ था। शुरू से ही यह प्रतिभाशाली थे। मिडिल, हाई स्कूल के छात्र रहते हुये इनकी रुचि गणित और रासायन की ओर बढ़ गयी। एम.एस.सी. की परीक्षा इन्होंने कलकत्ता विश्व-विद्यालय से प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। कलकत्ता विश्वविद्यालय में रहते हुये यह महामना प्रफुल्लचन्द्र रे और सर जगदीशचन्द्र बोस के सान्निध्य में आये जिनका इनके जीवन पर बहुत ही गहरा प्रभाव पड़ा। उन्ही की दी हुई प्रेरणा से यह फिर अपने मार्ग पर आगे बढ़ते चले गये।

अपने शोधकार्यों के कारण 1919 में इन्हें D.Sc. की उपाधि मिली। फिर यह विदेश-भ्रमण के लिये निकल गये। इंगलैण्ड में इन्होंने वहाँ के सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक कालडर की प्रयोगशाला में काम किया। सर जे.जे. टामसन और रुदरफोर्ड जैसे महान वैज्ञानिक भी इनसे बहुत प्रभावित हुये और इनके कार्यों की भूरि भूरि प्रशंसा की।

यहाँ से आप जर्मनी गये वहाँ से फिर इन्गलैण्ड और बाद में भारत आगये। यहाँ पर इन्होंने प्रयाग विश्वविद्यालय में भौतिक शास्त्र के अध्यक्ष का भार सम्भाला और लगभग १५ वर्ष वह यहाँ रहे।

इन्होंने प्रकाश, वर्णमण्डल, सूर्य, सूर्यकलंक, आदि के बारे में अपने नवीन सिद्धान्त निकाले। कुछ प्रसिद्ध सिद्धान्त हैं, Thermal Ionisation, Theory of Stellar Spectra, आदि।

कई प्रकार के पुरस्कार, सम्मानपत्र, उपाधियों से यह निरन्तर सम्मानित होते रहे हैं।

भारत के विज्ञान कांग्रेस के अधिवेशन में यह सभापति चुने गये। इन्हीं के प्रेरणा स्वरूप National Institute of Science की स्थापना की गई। विज्ञान की प्रमुख पत्रिका "Science and Culture" के यह सम्पादक हैं। इनकी कई पाठ्य पुस्तकें विदेश के विश्वविद्यालयों में पढ़ायी जाती हैं।

विज्ञान का मानव समाज पर प्रभाव

आज के विज्ञान पर किसी ने व्यंग्य किया था कि एक मशीन ४० साधारण व्यक्तियों का कार्य कर सकती है परन्तु चालीस मशीनें एक असाधारण व्यक्ति का कार्य नहीं कर सकतीं। विज्ञान ने सचमुच हमें बहुत कुछ दिया है। हमारा भौतिक सुख पहले से कई गुना बढ़ गया है। परन्तु शायद हम कुछ खो भी बैठे हैं। आज मनुष्य के पास इतनी शक्ति एकत्रित हो गई है कि दस दिनों के भीतर ही सम्पूर्ण विश्व का सर्वनाश किया जा सकता है। हमारे विश्व-युद्धों का ध्येय है शान्ति प्राप्त करना। जब कि शान्ति बिना युद्ध के भी प्राप्त की जा सकती है। विज्ञान जितना स्वयं बदनाम हो गया है उतना वह है नहीं या यों समझ लीजिये कि किसी भी प्रकार वह बुरा नहीं है। अशुभकारी है केवल उसका दुरुपयोग। राजनीति का मोहरा बन कर इसके अनिष्टकारी प्रभाव दृष्टिगोचर होने लगे हैं।

हजारों वर्ष पूर्व ही विज्ञान ने जन्म ले लिया था। मनुष्य ने जब से अस्त्र, अग्नि, खेती, घर का आविष्कार का लिया था, तभी से विज्ञान की नींवें पड़ गई थीं। विज्ञान का ध्येय सत्य और ज्ञान की खोज ही तो है। सुव्यवस्थित ज्ञान को ही हम विज्ञान कहते हैं। आज की बीसवीं सदी में न जाने विज्ञान ने हमें कितनी बहुमूल्य उपलब्धियाँ दे डाली हैं। लभगग तीन चार शताब्दियों से तो विज्ञान ने आशातीत उन्नतिकर डाली है।। आधुनिक युग का प्रारम्भ हम जेम्स वाट से कर सकते हैं जिसने 1763 में वाष्प चालित एन्जिन का रूप दिया। पिछली एक शताब्दी से तो हम इतनी तेजी से आगे बढ़ रहे हैं कि जितनी उपलब्धियाँ हमें इसी शताब्दी में प्राप्त हो गई हैं उतनी शायद कुल मिलाकर पिछले पूरे मानवयुग में भी नहीं हुईं। टेलीविज़न, गाइडिड मिसाइल, लोहे के फेफड़े, रडार, जैट इन्जिन, नाइलौन, थ्री डी चलचित्र, एटम शक्ति से चलने वाले जहाज आदि तो बिल्कुल ही नये आविष्कार हैं।

आज विज्ञान की शक्ति चारों तरफ फैलती जा रही है। यदि हम विज्ञान को ठीक प्रकार समझ सकें, उसका सुचारु रूप से उपयोग कर सकें तो विज्ञान हमारे लिये बहुत कुछ कर सकता है हमारे ऊपर अनेक वरदान बरसा सकता है। एटम की शक्ति से हजारों मशीनें चलायी जा सकती हैं। लाखों एकड़ ऊसर ज़मीन हरियाली में परिवर्तित की जा सकती है।

छात्रावस्था में यदि विज्ञान के प्रति रुचि बढ़ानी है तो प्रत्येक छात्र को ज़ू, अजायबघर, और बोटेनिकल गार्डन अवश्य जाना चाहिये। ज़ू में हमें प्रत्येक

प्रकार के जानवरों की आदतों, उनके रहन सहन और भोजन की व्यवस्था ज्ञात हो जाती है। भिन्न भिन्न देशों के जीवों के साथ वहाँ का जलवायु वहाँ की जमीन का भी हमें ज्ञान हो जाता है। अजायबघरों में दुनियाँ की आश्चर्यजनक और ज्ञानवर्धक चीजों को सुचारु रूप से जमा किया जाता है। एक अजायबघर में हम मनुष्य के सभ्यता के चिन्ह, स्थानीय कला और दूसरे देशों के उद्योग, कला, क्राफ्ट आदि देख सकते हैं। बड़े अजायबघरों में हमें जीवों और पौधों के माडलों द्वारा विस्तृत जानकारी प्राप्त हो जाती है। फूल का प्रत्येक अंग जिस स्पष्ट रीति से अजायबघर में समझाया हुआ मिलेगा शायद वह किसी पुस्तक में नहीं। अनेक प्रकार के साँपों, अजगरों आदि को देख कर हमारी आँखें खुल जाती हैं। नये नये पहिनावे, देश देश के व्यक्तियों के मॉडल देखकर हमारा भूगोल, इतिहास के प्रति रुचि बढ़ जाती है।

बोटेनिकल गार्डन में हमें व्यवस्थित रूप से पौधों का ज्ञान प्राप्त होता है। भिन्न भिन्न जलवायु में उत्पन्न होने वाले पौधे हमें एक ही स्थान में मिल जाते हैं। पौधों की आदतें, उनका विकास, उनके फूलों आदि के बारे में हमें विस्तृत जानकारी प्राप्त हो जाती है।